जीवन के लिये उपयोगी अध्यात्म का वैज्ञानिक चिन्तन

डॉ. पारसमल अग्रवाल

सम्पर्क: 11 भैरवधाम कॉलोनी, सेक्टर 3 हिरण मगरी, उदयपुर (राज.), 97847-05711

आत्मा का अस्तित्व ?	2
स्वर्ग एवं नरक का अस्तित्व ?	4
कर्म सिद्धांत का अस्तित्व ?	7
पश्चिम के परिप्रेक्ष्य में भगवान महावीर	14
जैन आचार–विचार आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में	19
आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में ध्यान एवं सामायिक	23
जैनागम में वर्णित ध्यान	33
अमरीकन मेडिकल अशोसिएशन एव ध्यान	41
ईर्या समिति एव चार हाथ देखकर चलने की वैज्ञानिकता	42
आत्मज्ञान एव आधुनिक मनोविज्ञान	43
समयसार–परिचय	51
आत्म शुध्दता	56
कम्प्यूटर का विकास एवं भेदविज्ञान	57
समयसार गाथा 3 के परिप्रेक्ष्य में सुन्दरता	58
निमित्त उपादान एवं भौतिक विज्ञान	60
मैं कौन हूँ ?	64
कुछ रोचक आंकड़े; ब्रह्माण्ड में जीवन	65
आधुनिक विज्ञान एवं द्रव्य की अविनाशिता	67
आधुनिक विज्ञान के सन्दर्भ में जैनागम के कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु	69
व्यवहार पल्य का गणित एवं आधुनिक विज्ञान	76
लेखक परिचय	83

1. (क) आत्मा का अस्तित्व

विज्ञान, अध्यात्म और हमारा जीवन -१

आत्मा का अस्तित्व

डॉ. पी.एम.अग्रवाल विवेकानंद कोलोनी-उज्जैन-४५६०१०

आत्मा की बात करते ही ऐसा लगता है कि हम विज्ञान के विरोधी हो गए हैं। यद्यपि विज्ञान द्वारा अब तक आत्मा सिद्ध नहीं हुआ है किन्तु यह भी तो विचारना होगा कि अब तक वैज्ञानिकों ने गंभीर रुपसे बहुत कम प्रयास इस दिशा में किए हैं। व्यापारिक या सैनिक लाभ की दृष्टि से ही अधिकांश अनुसंधान वैज्ञानिक अब तक करते रहे हैं। जीव विज्ञान (Biology) के अध्ययन में भी आधुनिक वैज्ञानिकों की सोच अजर-अमर अविनाशी आत्मद्रव्य की तरफ न होकर शरीर के हलन-चलन, प्रजनन, चिकित्सा आदि में रही है। इतना सब होते हुए भी कई नोबुल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिकों ने अपने स्वंय के चिन्तन, अनुभव एवं तर्क के आधार पर आत्मा का अस्तित्व स्वीकार किया है।

अमरीका के डॉक्टर जार्ज वाल्ड (George Wald), जिन्हें औषधि विज्ञान का १९६७ का नोबुल पुरस्कार मिला है, उन प्रसिद्ध वैज्ञानिकों में से हैं जिन्होंने अविनाशी आत्मा के अस्तित्व को ठोस तर्कों के आधार पर स्वीकारा है। भक्ति वेदांत इंस्टिट्यूट बंबई द्वारा १९८८ में प्रकाशित पुस्तक 'Synthesis of Science and Religion' के पृष्ठ ८ से २१ पर डॉक्टर जार्ज वाल्ड का एक लेख प्रकाशित हुआ है। इस लेख में उन्होंने आत्मा को अविनाशी एवं शाश्वत द्रव्य स्वीकारा है। इससे संबन्धित उनके कुछ तर्क उस लेख के निम्नांकित दो परिच्छेदों में स्पष्ट हो सकते हैं -

"इस भाषण में दो समस्याओं पर मैंने प्रकाश डाला है। पहली यह कि हमारी यह सृष्टि ऐसी अनोखी है कि इसमें ऐसी समस्त विशेषताएँ हैं जिनसे जीवधारियों की पालना संभव है; तथा दूसरी समस्या चेतना (आत्मा) की है जो कि क्षेत्र एवं समय से परे है व जिसका ठिकाना बताना संभव नहीं है।" इससे आगे वाल्ड लिखते हैं -

"कुछ वर्षों पहले मुझे ऐसा लगा कि अत्यन्त पृथक लगने वाली ये दोनों समस्याएं समीप लाई जा सकती हैं। ऐसा करने के लिए एक नया सिद्धान्त मानना होगा। मन (आत्मा) इस सृष्टि में विकसित जीवधारियों की उत्पत्ति के बाद आया-ऐसी जो मेरी तब तक की धारणा रह चुकी थी। ऐसी धारणा के विपरीत अब यह सिद्धान्त मानना होगा कि मन (आत्मा) तो जगत में सदैव ही रहा है व ऐसे मन (आत्मा) की शाश्वत

उपस्थिति से ही जगत में जीवधारी बने हुए है ।"

डॉक्टर वाल्ड ने इस लेख में भारतीय दर्शन में प्रचलित शब्द 'ब्रह्म या आत्मा' के लिए आधुनिक विज्ञान मे प्रचलित शब्द मन (Mind) का उपयोग किया है ; ऐसा उन्होंने स्वयं लेख के अंत में स्वीकारा है । किन्तु उन्होंने आधुनिक विज्ञान से हटकर इसे शाश्वत द्रव्य के रूप में स्वीकारा है ; (उन्हीं के शब्दों में-"That is the stuff of the universe. mind stuff; and yes, each of us shares in it.")।

डॉक्टर वाल्ड का यह सोच इतना क्रान्तिकारी है कि उन्हे स्वयं को शुरु शुरु. में ऐसा लगा था कि उनकी ऐसी मान्यता से वे वैज्ञानिक जगत में उपहास के पात्र हो जाएंगे । किन्तु कुछ ही सप्ताहों बाद उन्हें यह जानकर बहुत तसल्ली हुई कि उनकी इस मान्यता को न केवल हजारों वर्ष पुराने पूर्व (East) के दार्शनिकों ने स्वीकारा है अपितु आज के महान भौतिक वैज्ञानिकों ने भी स्वीकारा है । उसी लेख में ऐसा वर्णन करने के बाद उन्होंने भौतिक विज्ञान के दो नोबुल पुरस्कार विजेता स्क्रोडिंगर (Schrodinger) तथा पाउली (Pauli) ,एवं महान वैज्ञानिक एडिंगटन (Arthur Eddington) के कथनों को भी उदृत किया जिनमें इन वैज्ञानिकों ने आत्मा के अस्तित्व को स्वीकारा है ।

सारांश यह की चेतना या जीव अस्ल रासायनिक ऊर्जा न होकर पृथक से अविनाशी या शाश्वत द्रव्य है – ऐसी धारणा कई श्रेष्ठतम वैज्ञानिकों की रही है ।

यह कहना कठिन है कि कितने वर्षों बाद वैज्ञानिक आत्मा के अस्तित्व को पूर्णतया सिद्ध कर देंगे । किन्तु इतना कहना तो सरल है कि हमारा यह मनुष्य जीवन प्रति क्षण व्यतीत होता जा रहा है । हमें यदि आत्मा की स्वीकृति से आज ही भय एवं तनावों की कमी महसूस होती है तो वैज्ञानिकों के थोड़े संकेतों से ही बहुत कुछ समझ लेना चाहिए । वैसे भी हाथ कंगन को आरसी क्या ? यही बात तो आचार्य अमृतचन्द्र समयसार कलश क्र. २३ एवं ३४ में बताते हैं कि आत्मा है या नहीं है–ऐसे व्यर्थ के वाद विवाद को छोडकर शरीर से भिन्न आत्मा के अस्तित्व को तू स्वंय अनुभव कर – विरम किमपरेणाकार्यकोलाहलेन

स्वयमपि निभृतः सन् पश्य षण्मासमेकम् ।
हृदयसरसि पुंसः पुद्गलाद्भिन्नधाम्नो
ननु किमनुपलब्धिर्भाति किं चोपलब्धिः ।।

(समयसार कलश क्रं. ३४)

卐卐卐卐卐

1. (ख) स्वर्ग-नरक का अस्तित्व ?

विज्ञान, आध्यात्म और हमारा जीवन - ३

स्वर्ग एवं नरक का अस्तित्व ?

- डॉ. पारसमल अग्रवाल, उज्जैन

आधुनिक विज्ञान का यह निर्विवाद तथ्य है कि हमारे सूर्य के परिवार में बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, गुरु, शनि, अरुण, वरुण एवं यम नामक ९ ग्रह हैं । जो चन्द्रमा हमें दिखाई देता है वह हमारी पृथ्वी का उपग्रह है । इन ९ ग्रहों में से पृथ्वी की तुलना में २ ग्रह, बुध एवं शुक्र, सूर्य के अधिक नजदीक हैं । अतः वहाँ बहुत गर्मी रहती है व इस कारण वहां प्राणी जीवित नहीं रह सकते हैं । इसी प्रकार गुरु, शनि, अरुण, वरुण, एवं यम पर अधिक ठंडक होने के कारण प्राणियों की संभावना नहीं है । अतः हमारे सूर्य के परिवार में पृथ्वी के अतिरिक्त मंगल ग्रह पर प्राणियों की संभावना है ।

यह वर्णन तो मात्र हमारे सूर्य के परिवार का हुआ जिसे सौर परिवार कहा जाता है । जैसे कई परिवारों से मिलकर एक नगर बनता है उसी प्रकार कई सौर परिवार जैसे आकाशीय पिण्डों का एक समुदाय एक गेलेक्सी का नाम पाता है । हमारा सौर परिवार जिस गेलेक्सी में है उसे आकाशगंगा (Milky Way) कहा जाता है । हमारी इस गेलेक्सी मे हैं हमारे सूर्य की तरह लगभग 1 000 000 000 00 (100 अरब) तारे हैं । जैसे हमारे सूर्य के साथ ९ ग्रह हैं । उसी प्रकार तारों के साथ भी कई ग्रह होते हैं । एक तारा सूर्य की तरह ही अत्यंत विशाल (पृथ्वी से लाखों गुना बड़ा) आग का गोला होता है । बहुत दूरी होने के कारण तारा हमें छोटा दिखाई देता है । दूरी का अन्दाज हम इस बात से लगा सकते हैं कि जहां सूर्य के प्रकाश को हमारी पृथ्वी तक आने में लगभग 499 सेकण्ड लगते हैं । वहाँ हमारे से सबसे नजदीक तारे के प्रकाश को हम तक आने में लगभग सवाचार वर्ष लगते हैं ।

जैसे एक शहर राष्ट्र नहीं होता है उसी तरह मात्र 100 अरब तारोंवाली गेलेक्सी ही ब्रह्माण्ड नहीं है । पूरे ब्रह्मांड में स्टेफन हाकिंग (Stephen W. Hawking) के अनुसार लगभग 1000 अरब गेलेक्सी

हैं । इस प्रकार कुल मिलाकर इस ब्रह्मांड में लगभग 1 000 000 000 000 000 000 000 00 (1 के आगे 23 शून्य) तारे हैं।

औषधी विज्ञान के १९६७ के नोबुल पुरस्कार विजेता जार्ज वाल्ड एवं कई खगोल वैज्ञानिक एक प्रतिशत तारों के ग्रहों में जीवन की संभावना मानते है। इसका अर्थ यह हुआ की लगभग 1 000 000 000 000 000 000 000 (1 के आगे 21 शून्य = करोड़ x करोड़ x करोड़) ग्रहों में जीवन की संभावना है। वैज्ञानिकों का मत यह भी है कि हमारी ही गैलेक्सी में एक लाख धरतियां (ग्रह) ऐसी हो सकती हैं जहां हमारी तरह या हमारे से ज्यादा विकसित जीवन हो। इस अनुपात से देखा जाये तो **पूरी सृष्टि में 1 000 000 000 000 000 00 (1 के आगे 17 शून्य) धरतियों (ग्रहों) पर विकसित प्राणियों के पाये जाने की संभावना है।** स्टेफन हाकिंग जो कि आज के खगोल भौतिक विदों में शिरोमणी हैं व जिनकी तुलना आइन्सटीन व न्यूटन जैसे वैज्ञानिकों से की जाती है बताते हैं कि कहीं कहीं पर तो एसे विकसित बुद्धि वाले प्राणी भी हो सकते हैं जिनकी कल्पना कवि भी नहीं कर सकता है। (उन्हीं के शब्दों में - "Of ~~urse,~~ course, there might be other ~~from~~ form of intelligent life, not dreamed of even by writers of science fiction...")।

सारांश यह है कि करोड़ों करोड़ों पृथ्वियों पर हमारे से भी कम, बराबर व अधिक योग्यता वाले प्राणी रहेते होंगे - ऐसी मान्यता आधुनिक वैज्ञानिकों की है। यह भी वैज्ञानिक मानते हैं कि उन प्राणियों के रूप-रंग, आकार, बनावट आदि भी भिन्न २ प्रकार के हो सकते हैं। उनमें क्रोध आदि भावनाएं, खानपान, परस्पर मित्रता या द्वेष आदि भी कहीं हमारे मे कम व कहीं हमारे मे ज्यादा हो सकते हैं - ऐसा अनुमान लगाया जाना सांख्यिकी के अनुसार उचित ही होगा।

~~तत्वार्थ में सूत्र~~आचार्य उमास्वामी लिखते हैं -

नारका नित्याशुभतर लेश्या परिणाम देह वेदना विक्रियाः ॥

परस्परोदीरित दुःखाः ॥ (३.३ एवं ३.५) (तत्वार्थसूत्र)

इसका भावार्थ यह है कि नारकी जीव सदैव ही अत्यंत अशुभ लेश्या, परिणाम, शरीर, वेदना और विक्रिया को धारण करते है, एवं एक दूसरे को दुःख उत्पन्न करते हैं।

(अनुसंधान पान नं.२० पर चालु)

(अनुसंधान पान नं.से १५ चालु)

दूसरे ग्रहों की इसी जन्म में सैर करके इस तरह नरक का निरीक्षण करना संभव नहीं है किन्तु यहां के पृथ्वीलोक के अनुभव, उक्त वैज्ञानिकों की करोड़ो-करोड़ो धरतियों पर विशिष्ट बुद्धि वाले एवं शक्तिशाली प्राणियों की संभावना के ज्ञान से यह अनुमान लगाना कठिन नहीं होगा कि उमास्वामी ने उक्त सूत्र में जैसा बताया वैसे दुःखवाले ठिकाने इस विशाल ब्रह्मांड में संभव है। इसी प्रकार के तर्क स्वर्ग के बारे में दिए जा सकते हैं।

यदि कई धरतियाँ है जहां प्राणी निवास करते है व सुख-दुःख भोग रहे हैं, व जीवद्रव्य का अस्तित्व मान लेते हैं *, तथा द्रव्य के रूप में जीव को अविनाशी समझ लेते हैं **, तो फिर स्वर्ग-नरक की धारणा को स्पष्ट करने के लिए इतना ही अधिक जानने की आवश्यकता रह जायेगी कि प्राणी का पुनर्जन्म उसके किए गए कर्मों के अनुसार होता है। (कर्म-सिद्धांत से संबन्धित लेखों में इसका आगे खुलासा हो सकेगा।)

* देखो लेखक की पूर्व रचना - 'तीर्थंकर वाणी', अगस्त ९५, पृ.१२

** देखो लेखक की पूर्व रचना - 'तीर्थंकर वाणी', सितम्बर ९५, पृ.४३

वर्ष - 8, अंक - 1, जनवरी - 96, 9 - 15

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

कारण - कार्य सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में

1.(ग) कर्म सिद्धान्त एवं भौतिक विज्ञान का क्वाण्टम सिद्धान्त*

□ पारसमल अग्रवाल**

1. कारण - कार्य सिद्धान्त -

यदि हम एक काँच के बरतन को जमीन पर गिराएं तो उसके बहुत प्रकार के छोटे - मोटे टुकड़े हो जाते हैं। कुछ टुकड़े बहुत दूर तक बिखर जाते हैं। कुछ नजदीक गिरते हैं। कुछ पूर्व में, कुछ पश्चिम में.....। कुल मिलाकर हमें सब कुछ अस्तव्यस्त लगता है किन्तु भौतिक वैज्ञानिक को लगता है कि यह सब निश्चित नियमों के अनुसार व्यवस्थित ढंग से हुआ है।

इस तथ्य को भौतिक विज्ञान यह कह कर भी स्वीकारता है कि प्रकृति में कारण - कार्य सिद्धान्त लागू होता है, यानी निश्चित कारणों से निश्चित कार्य होता है।

आचार्य अमृतचन्द्र इसी भाव को समयसार कलश में निम्नानुसार व्यक्त करते हैं[1] : -

बहिर्लुठति यद्यपि स्फुटदनंत शक्तिः स्वयं
तथाप्यपरवस्तुनो विशति नान्यवस्त्वन्तरम्।
स्वभाव नियतं यतः सकलमेव वस्त्विष्यते
स्वभावचलनाकुलः किमिह मोहितः क्लिश्यते॥

इस कलश में आचार्य वस्तुओं को स्वभाव में नियत बताकर हमें यह उपदेश दे रहे हैं कि जब समस्त वस्तुएं स्वभाव में नियत हैं, तब (हे जीव!) (तुम) स्वभाव से चलित होकर मोहित होते हुए क्यों क्लेश पाते हो।

कारण - कार्य सिद्धान्त की क्वाण्टम यांत्रिकी में अस्वीकृति : -

सन् 1925 तक कारण - कार्य सिद्धान्त भौतिक विज्ञान में स्वीकृत होता रहा। किन्तु श्रोडिंगर, हाइजेनबर्ग, बोर्न, बोर, प्लांक, दे - ब्राग्ली, आदि द्वारा पल्लवित एवं पुष्पित क्वाण्टम यांत्रिकी में कारण - कार्य सिद्धान्त को पूर्णतया स्वीकृति नहीं मिली।[2] क्वाण्टम यांत्रिकी आज विज्ञान की गहनतम श्रेष्ठ खोज मानी जाती है। क्वाण्टम यांत्रिकी में कारण - कार्य सिद्धान्त को संभावनात्मक स्वीकृति मिली। क्वाण्टम यांत्रिकी के अनुसार सभी आवश्यक कारणों के मिलते हुए भी अभीष्ट कार्य होने की 100 प्रतिशत ग्यारण्टी नहीं है। यानी समान कारणों के होते हुए भी कार्य (फल) असमान हो सकते हैं। इतना ही नहीं इस अनोखे क्वाण्टम सिद्धान्त में बड़ी शान के साथ 'अनिश्चितता सिद्धान्त' को स्वीकारा गया। अनिश्चितता सिद्धान्त के अनुसार किसी भी (सूक्ष्म) कण की स्थिति एवं गति का मापन एक साथ शुद्ध रूप

---

* जैन विज्ञान विचार संगोष्ठी, झांसी (29.9.95 - 1.10.95) में पठित

** सदस्य - मानद् निदेशक मण्डल, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ एवं उपाचार्य - भौतिकी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन। सम्पर्क : बी - 220, विवेकानन्द कालोनी, उज्जैन

से न तो जाना जा सकता है और न ही बताया जा सकता है।

एक तरह से मुनष्य की सामान्य विवेक बुद्धि से क्वाण्टम यांत्रिकी समझ में नहीं आती है। नोबुल पुरस्कार विजेता बोर ने तो यहां तक कहा कि यदि क्वाण्टम यांत्रिकी को पढ़कर कोई व्यक्ति चौंक न जाये तो यह मानना चाहिए कि उस व्यक्ति को क्वाण्टम यांत्रिकी समझ में नहीं आई है। आइन्सटीन[3] जैसे महान वैज्ञानिक क्वाण्टम यांत्रिकी से इतने चौंक गये थे कि वे मरते दम तक क्वाण्टम-यांत्रिकी के प्रशंसक तो रहे किन्तु इस पर शंका भी करते रहे कि कहीं-न-कहीं कोई चूक हो रही है जिससे कारण-कार्य सिद्धान्त पूर्णतया लागू नहीं हो पा रहा है।

3. कर्म सिद्धान्त द्वारा कारण-कार्य सिद्धान्त की रक्षा:-

आइन्सटीन क्वाण्टम यांत्रिकी एवं कारण-कार्य सिद्धान्त की रक्षा करने हेतु यह खोजते रहे कि सूक्ष्म कणों के व्यवहार को समझने में चूक कहां हो रही है? चूक कहां हो रही है? इस प्रश्न का उत्तर शायद कर्म-सिद्धान्त दे सकता है। प्रयोगशाला में जब सूक्ष्म-कणों पर प्रयोग किये जाते हैं तब वैज्ञानिक उपकरणों की पकड़ में अत्यन्त सूक्ष्म कर्म-धूलि पकड़ में नहीं आती है। एक इलेक्ट्रान का द्रव्यमान एक ग्राम के करोड़वें भाग के करोड़वें भाग के करोड़वें भाग का ग्यारह लाखवां भाग होता है। इतना सूक्ष्मकण वैज्ञानिकों की पकड़ में है किन्तु कर्म-धूलि तो इससे भी अत्यन्त सूक्ष्म है। आचार्य उमास्वामी[4] के अनुसार कर्म-धूलि परम सूक्ष्म होती है:-

औदारिक वैक्रियकाहारकतैजस कार्मणानि शरीराणि॥ 2.36
परं परं सूक्ष्मं ॥ 2.37

हम कर्म-धूलि को उपकरणों से पकड़ पायें या नहीं, किन्तु यदि कर्म-धूलि है तो उसका प्रभाव तो होगा ही। यानी चूक यह हो सकती है कि प्रयोगकर्ता की भावना के अनुसार कर्म-धूलि प्रयोग को प्रभावित कर रही है किन्तु वैज्ञानिक उस कर्म-धूलि को गिनना चूक रहे हैं। आज यदा-कदा कई वैज्ञानिक यह स्वीकार करने लगे हैं कि प्रयोग कर्ता की भावना का प्रभाव यंत्रों पर पड़ता है। इस तथ्य का विस्तार से वर्णन 'द गास्ट इन द एटम'[5] नामक पुस्तक में देखा जा सकता है। इस पुस्तक में 'कर्म-धूलि' का जिक्र नहीं है किन्तु प्रयोगकर्ता की भावना का प्रभाव प्रयोग पर होता है-यह मानकर क्वाण्टम यांत्रिकी एवं कारण-कार्य सिद्धान्त की रक्षा करने का प्रयास किया गया है।

विग्नर[6], डायर[7] श्रोडिंगर[8] एवं पाउली[9] जैसे नोबुल पुरस्कार विजेता भी कारण-कार्य सिद्धान्त की रक्षा हेतु दिमागी विचारों का प्रभाव स्वीकारते हैं।

4. कर्म-सिद्धान्त का प्रायोगिक समर्थन:-

आप कहेंगे कि ऊपर कर्म-सिद्धान्त को जिस तरह से प्रवेश कराया है वह तो तुक्का मात्र हैं। यहां यह भी प्रश्न हो सकता है कि किस भावना के अनुसार किस प्रकार की कर्म-धूलि होगी व उसके परिणाम किस प्रकार के होंगे? इस प्रश्न का उत्तर जो कि मनुष्यों के जीवन में उपयोगी हो सकता है वह हमें कर्म-सिद्धान्त के विस्तृत रूप में मिलता है। किस प्रकार के विचारों से किस प्रकार का फल मिलता है यह विस्तार

से कई ग्रन्थों में बताया गया है। उदाहरण के लिये हम आचार्य उमास्वामी के तत्वार्थसूत्र में वर्णित कुछ सूत्र ले सकते हैं। जैसे उमास्वामी ने बताया कि स्वयं को, पर को, या दोनों को एक साथ, दुःख, शोक, ताप (पश्चाताप), आक्रंदन (पश्चाताप से अश्रुपात करके रोना), वध (प्राणों का वियोग), एवं परिदेव (संक्लेश परिणामों से ऐसा रूदन करना कि सुननेवाले के हृदय में दया उत्पन्न हो जाये) उत्पन्न करने से असातावेदनीय कर्म का बंधन होता है, अर्थात् ऐसा करने से भविष्य में भी दुःख एवं अशांति की सामग्री मिलती है। आचार्य उमास्वामी[4] के शब्दों में

दुःख शोकतापाक्रंदन वध परिदेवनान्यात्मपरो –
भय स्थानान्यसद्वेद्यस्य ॥ 6 – 11

इसके विपरीत शुभ भावों से सातावेदनीय का बंध होता है। आचार्य[4] लिखते हैं -

भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोग: क्षान्ति: शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥ 6 – 12

इस सूत्र का अभिप्राय यह है कि प्राणियों के प्रति और व्रतधारियों के प्रति अनुकम्पा (दया), दान सराग संयमादि के योग, क्षमा, शौच इत्यादि सातावेदनीय कर्म के आस्रव के कारण हैं।

और भी इसी तरह के कई सूत्र उमास्वामी सहित कई आचार्यों[10] ने प्राचीन ग्रन्थों में लिपिबद्ध किये हैं।

इन सूत्रों की आंशिक पुष्टि कई प्रयोगों से होती है। डॉ. दीपक चोपड़ा अमरीका में अपने नर्सिंग होम में दवा के अतिरिक्त शुभ विचारों के प्रभाव से ऐसी - ऐसी बीमारियां ठीक करते हैं जिनका मात्र दवा से उपचार संभव नहीं हो पाता है। अपनी इस चिकित्सा पद्धति को वे क्वाण्टम चिकित्सा[11] (Quantum Healing) कहते हैं। इस पद्धति की लोकप्रियता का अनुमान इससे भी लगाया जा सकता है कि उनके द्वारा लिखित पुस्तकें अमरीका के छोटे से छोटे नगर के बुक स्टोर एवं पुस्तकालय में भी मिल जाती है। उनका सिद्धान्त यह है कि दवा के कण, श्वांस की वायु के कण, भोजन के कण अच्छे विचारों के अनुसार शरीर के ऐसे भागों में पहुँच सकते हैं जहां वे बीमारी घटा सकते हैं। 'क्वाण्टम' विश्लेषण का आधार क्वाण्टम यांत्रिकी द्वारा वर्णित सूक्ष्मकणों का संभावनात्मक व्यवहार है। दूसरे शब्दों में, दवा से मरीज के ठीक होने की संभावना को बढ़ाने हेतु अतिरिक्त कारण के रूप में वे मनुष्य के सद्विचारों का सहारा लेते हैं। उमास्वामी यहां यह कहते हैं कि ये शुभ भाव ऐसी कर्म - धूलि को आमंत्रित करते हैं जिसका फल मनुष्य के लिए शुभ हो जाता है।

और भी कई उदाहरण इसके समर्थन में आज भौतिक सुखों के लिए जागरूक अमरीका में दिखाई दे सकते हैं। जैसे -

नार्मन विन्सेण्ट पील अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द पावर ऑफ पाजेटिव थिंकिंग' में अपने विस्तृत अनुभव, प्रयोग एवं अध्ययन के आधार पर लिखते हैं[12] -

"**डॉ. वीस** (Weiss) का कथन है कि जोड़ो एवं मांसपेशियों के दर्द के क्रॉनिक रोगी अपने किसी निकट के व्यक्ति के प्रति अन्दरूनी में आक्रोश भाव का पोषण करने

से पीड़ित हो सकते हैं।''

शुभ विचारों का उपयोग चिकित्सा में करके लुई हे (Louise Hay) ने स्वयं ऐसा कैंसर का रोग ठीक किया था जिसको डॉक्टरों ने लाइलाज घोषित कर दिया था। आज यह महिला अमरीका में सैकड़ों प्रकार की बीमारियों का उपचार कर रही हैं। लुइ हे की मान्यता यह भी है कि विचारों के अनुसार ही संयोग बन जाते हैं। लुई हे यहां तक लिखती है कि हमारे माता-पिता का चुनाव भी हमारे पूर्व विचारों के अनुसार ही होता है[13]। लुई हे द्वारा अंग्रेजी भाषा में लिखित पुस्तक 'हील योअर बाडी' इतनी प्रसिद्ध हो रही है कि अब तक इस पुस्तक का स्पेनिश, फ्रेंच, जर्मन, पोलिश, डच एवं स्वीडिश भाषा में अनुवाद हो चुका है। इस पुस्तक के लेखन के उपरांत लुई हे ने पाया कि न केवल शरीर अपितु जीवन की कई समस्याएं-आर्थिक, पारिवारिक भी विचारों से हल हो सकती हैं। इस अनुभव को लुई हे ने 'यू केन हील योअर लाइफ' नामक पुस्तक में संकलित किया है। इस पुस्तक की एक झलक के रूप में निम्नांकित अंश द्रष्टव्य है[13]-

''लम्बे समय तक बने रहने वाला नाराजगी भाव शरीर में कैंसर पैदा कर सकता है। आलोचना करने की स्थायी आदत बहुधा आर्थराइटिस पैदा करती है। अपराध भाव (पश्चाताप भाव) हमेशा सजा की ओर ले जाता है अतः शरीर में दर्द की बीमारी अपराध भाव से होती है। (जब कोई रोगी मेरे पास बहुत ज्यादा दर्द की शिकायत लेकर आता है तब मैं जान लेती हूं कि इस रोगी के मन में अत्यधिक पश्चाताप है)। डर एवं डर के कारण उत्पन्न तनाव से गंजापन, अल्सर एवं पांव फटने की बीमारियां होती हैं।''

''मैंने पाया है कि क्षमा भाव रखने एवं नाराजगी त्यागने से कैंसर भी ठीक हो सकता है। यह बहुत सरल (इलाज) लग सकता है किन्तु मैंने तो इसकी सफलता देखी है व अनुभव किया है।''

इसी तरह अमरीका के वेन डायर अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'रिअल मेजिक' में ग्रेग एंडरसन (Greg Anderson) का हवाला देते हैं जिन्हें लाइलाज कैंसर हो गया था, बाद में शुभ विचारों की अतिरिक्त मदद लेकर ग्रेग एंडरसन चंगे हुए थे व दुनिया के लाभ के लिये एक पुस्तक लिखी थी जिसका शीर्षक है 'द कैंसर कान्करर्स'। इस सन्दर्भ में वेन डायर लिखते हैं[14]-

उन्हें (ग्रेग एण्डरसन को) यह अनुभव हुआ कि डर, क्रोध एवं दीन-हीन भावनाएं व्यक्ति की रोग निवारण शक्ति को बहुत कमजोर बना देती हैं। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि निःस्वार्थ प्रेम, आंतरिक शांति, स्नेह देना, दूसरों से वापसी की चाह कम करना तथा ध्यान एवं अच्छे दृश्यों की मन में कल्पना, ये सब कैंसर को हटाने के साधन हैं। .....मैं यह सलाह देता हूं कि आप इस अद्भुत पुस्तक को पढ़ें एवं जिसे कैंसर हो गया है उसको इस पुस्तक के ज्ञान को वितरित करें।''

इसी पुस्तक 'रिअल मेजिक' के पृ. 34-38 पर वेन डायर ने कई वैज्ञानिकों के हवाले से विचारों के भौतिक पदार्थों पर प्रभाव की पुष्टि की है।

उद्धरणों की यह सूची बहुत लम्बी हो सकती हैं। किन्तु इसका लाभ व्यक्ति को

तभी मिलेगा जब वह स्वयं प्रयोग करे।

यहां यह ध्यान में रखना भी उचित होगा कि सच्चे अध्यात्म का स्तर दूसरों के भले - बुरे की भावना से ऊपर होता है। पं. दौलतरामजी के शब्दों में[15] -

जिन पुण्य - पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिन ही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके॥

इसका अभिप्राय यही है कि कर्मों का आसव एवं बंध का अभाव आत्मा के अनुभव की शुरूआत से होता है व यही सच्चे सुख का मार्ग होगा। यह सुख पुण्य एवं पाप से परे है।

5. अकेला जीव एवं कारण - कार्य सिद्धान्त -

अजीव - अजीव संबन्धित कारण - कार्य सिद्धान्तों के आधार पर भौतिक विज्ञान टिका हुआ है। जीव - अजीव एवं जीव - जीव के परस्पर व्यवहार से संबन्धित प्रकृति की व्यवस्था कर्म - सिद्धान्त से मिलती है। किन्तु जब मात्र एक जीव पर चर्चा करना हो वहां कारण भी स्वयं वह जीव होता है व कार्य भी स्वयं उस जीव में होता है। इसकी चर्चा समयसार[16] जैसे ग्रन्थ में देखी जा सकती है।

आज ध्यान (मेडिटेशन) के लाभ जगत में नजर आ रहे हैं। जीव जब अन्य द्रव्यों से थोड़े समय के लिये भी अपने को भिन्न मानकर मन एवं इन्द्रियों को विश्राम देता है तो उसके इतने विकार एवं व्याधियां नष्ट हो जाती हैं कि इसके लाभ का थोड़ा सा अन्दाज आज हमें मेडिटेशन के लाभ के रूप में नजर आने लगा है। ब्लड प्रेशर, हृदय रोग, कैंसर, एस्थेमा, एलर्जी, ड्रग एवं नशे की लत आदि कई बीमारियों में ध्यान का लाभ पश्चिमी जगत में प्रायोगिक रूप से देखा गया है। डॉ. चौपड़ा[11] बताते हैं कि ध्यान के प्रभाव पर जो आंकड़ों का विश्लेषण एवं अनुसन्धान कार्य हुआ है उससे यह ज्ञात होता है कि हृदय रोग जैसी समस्या की संभावना ध्यान करने वालों को 87% कम हो जाती है।

अध्यात्म का द्वार भी मेडिटेशन से खुलता है। आचार्य अमृतचन्द्र के निम्नांकित समयसार कलश[17] का मर्म भी इस संबंध में विचारणीय है। एक मुहूर्त्त के लिए शरीर का पड़ौसी अनुभव करने की प्रेरणा एवं प्रतीती हेतु 6 माह के अभ्यास की सीख इन श्लोकों में आचार्य नें दी है: -

अयि कथमपि मृत्वा तत्त्व कौतूहली सन्
अनुभव भव मूर्त्तेः पार्श्ववर्त्ती मुहूर्त्तम्।
पृथगथ विलसंतं स्वं समालोक्य येन
त्यजसि झगिति मूर्त्या साकमेकत्वमोहम्॥ 23 ॥

विरम किमपरेणा कार्य कोलाहलेन्
स्वयमपि निभृतः सन् पश्य षण्मासमेकम्।
हृदयसरसि पुंसः पुद्गलाद्भिन्नधाम्नो
ननु किमनुपलब्धिर्भाति किं चोपलब्धिः ॥34॥

सन्दर्भ

1. आचार्य अमृतचन्द्र, समयसार कलश, क्रं. 212

2. (अ) पारसमल अग्रवाल, ''क्वाण्टम सिद्धान्त', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1983

   (ब) Paras Mal Agrawal, 'Quantum Mechanics', in Horizons of Physics, Edited by A.W. Joshi (Wiley Eastern, 1989) P.25

(3) Einstein's letter to Born of Dec.4, 1926 (Einstein Estate Princeton, N.J.) English version of the quotation:, "I look upon quantum mechanics with admiration and suspicion".

(4). आचार्य उमास्वामी, तत्वार्थ सूत्र

(5) P.C.W. Davies and J.R. Brown (Editors), 'The ghost in the atom', (Cambridge University Press, Cambridge, 1986)

(6) Eugene Wigner ने कहा था, "Man may have a nonmaterial consciousness capable of influencing matter."
इस तथ्य का उल्लेख सन्दर्भ 7 के पृष्ठ 37 पर भी देखा जा सकता है।

(7) Wayne W. Dyer, 'Real Magic', (Harper Paperbacks, New York, 1993)

(8) Erwin Schrodinger, 'Mind & Matter', (Cambridge, 1958)

(9) C.G. Jung and W. Pauli (each writing separately), 'Interpretation of Nature and the psyche', (Bollingen, New York, 1955, pp. 208-210)

(10) उदहारण के लिए - आचार्य नेमिचन्द्र, 'गोम्मटसार: कर्मकाण्ड', (श्री परमश्रुत प्रभावक मंडल, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास, आणंद, 1978)

(11) Deepak Chopra, 'Perfect Health', (Harmony Books, New York, 1991)

(12) Norman Vincent Peale, 'The Power of Positive Thinking'. The original english version of the quotation is (on P.194) as follows:

"Dr. Weiss stated that chronic victims of pains and aches in the muscles and joints may be suffering from nursing a smoldering grudge against someone close to them. He added that such persons usually are totally unaware that they bear a chronic resentment."

(13) Louise L. Hay, 'You can Heal your Life', (Hay House, 3029 Wilshire Blvd, Santa Monica, A 90404, USA) PP.12-13. The original english version of the quotation is as follows:

"Resentement that is long held can eat away at the body and become the disease we call cancer. Criticism as a permanent habit can often lead to arthritis in the body. Guilt always looks for punishment, and punishment creates pain. (When a client comes to me with a lot of pain. I know they are holding a lot of guilt). Fear and the tension it produces, can create things like baldness, ulcers, and even sore feet".

"I have found that forgiving and releasing resentment will dissolve even cancer. While this may sound simplistic, I have seen and experienced it working".

Note : on Page 10 of this book, this author also writes that, "We choose our parents".

(14) देखिये सन्दर्भ क्रं.7, पृष्ठ 276. The original english version of the quotation is as follows :

"He discovered how powerful fear, anger and distress are in affecting the immune system. He discovered also that unconditional love, inner peace, giving away love, reducing expectations of others and turning into the powerful effect of meditation and isvualization were the seeds for defeating the cancer that was raging in his body. .....I recommend that you read his wonderful book and share it with anyone you know who is diagnosed with cancer."

(15) पं. दौलतरामजी, छहढाला, अध्याय 5, छन्द 10

(16) आचार्य कुन्दकुन्द, समयसार

(17) देखिए, सन्दर्भ 1, कलश क्रं, 23 एवं 34.

प्राप्त - 10.10.95

2. (क)

पश्चिम के परिप्रेक्ष्य में भगवान महावीर

डॉ० पारसमल अग्रवाल

आचार्य, भौतिकी अध्ययन शाला

विक्रम विश्व विद्यालय, उज्जैन (म. प्र.)

इतिहास के सर्वाधिक प्रभावी व्यक्तियों की सूची में महावीर :

पिछले दशक में अमरीका में 572 पृष्ठों की एक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसका शीर्षक है 'The 100 : A Ranking of the Most Influential Personia In History'। इस शीर्षक का हिन्दी भावानुवाद होगा- 'विशिष्ट सौ: इतिहास के सर्वाधिक प्रभावी व्यक्तियों की सूची'।

कला, विज्ञान, साहित्य, राजनीति, धर्म आदि विभिन्न विषयों से संबन्धित पूरे विश्व को सर्वाधिक प्रभावित करने वाले एक सौ ऐतिहासिक व्यक्तियों की सूची बनाने का प्रयास इस पुस्तक में हुआ है। **इन सौ व्यक्तियों की सूची में भारत के तीन व्यक्तियों को स्थान मिला है उनमें एक स्थान अत्यन्त आदर के साथ अमरीकी लेखक माइकल हार्ट ने महावीर का स्वीकारा है।**

माइकल हार्ट अपनी उक्त पुस्तक में श्री महावीर के जीवन का वर्णन करते हुए बताते हैं कि श्री महावीर द्वारा तीस वर्ष की उम्र में राजसी शारीरिक सुख के साधनों का त्याग कर पार्श्वनाथ की परंपरा में दीक्षित होना, तप-उपवास करना, एक बर्तन भी न रखना, तपस्या के विकसित चरण में एक भी वस्त्र न रखना, कीट-पतंगों-मच्छरों को भी नग्न शरीर से हटाने का प्रयास न करना, समाज के कई व्यक्तियों के व्यंग्य, अपमान, बाधा, उपसर्ग आदि से प्रभावित न होना, ज्ञान-ध्यान में इस प्रकार 12 वर्ष तक लीन रहना व ज्ञान प्राप्ति के बाद अहिंसा का उपदेश स्वयं अहिंसा का पालन करते हुए देना ये सब ऐसे कारण बने जिनसे लाखों-लाखों व्यक्ति महावीर से प्रभावित हुए थे व आज तक हो रहे हैं।

वर्तमान में प्रभाव

महावीर की आध्यात्मिक उपलब्धि के साथ २ भौतिक जगत की वर्तमान उपलब्धियों पर प्रभाव की चर्चा करते हुए माइकल हार्ट उक्त पुस्तक में यह स्वीकारते हैं कि महावीर के उपदेशों का प्रभाव आधुनिक युग में भी देखा जा सकता है। उदाहरण के रूप में माइकल हार्ट महात्मागांधी का उल्लेख करते हैं जिन्होंने जैन दार्शनिक श्रीमद् राजचन्द्र को आध्यात्मिक गुरु मानकर अहिंसा आदि

सीखकर स्वयं के जीवन में एवं राष्ट्र के जीवन में महावीर के सिद्धान्त अपनाये थे। स्वयं महात्मागांधी ने अपनी आत्मकथा में यह स्वीकारा है कि अहिंसा एवं अध्यात्म का मर्म उन्होंने श्रीमद् राजचन्द्र से सीखा एवं जब २ उन्हें अहिंसा के बारे में कोई शंका उपस्थित होती वे राजचन्द्र से सम्पर्क करते थे।

लेखक माइकल हार्ट यह भी स्वीकारते हैं कि महावीर की शिक्षाओं में ही ऐसी विशेषताएं हैं जिनसे जैन समुदाय समृद्ध समाज है व जैनियों का बौद्धिक एवं कलात्मक योगदान भी जैन आबादी के अनुपात में बहुत अधिक है। ब्रिटेनिका एनसाइकलोपीडिया में भी जैन समाज को समृद्ध समाज के रूप में स्वीकारा है। समृद्ध क्यों ? कुछ बिन्दुओं पर चर्चा उपयोगी होगी।

कुव्यसनों के त्याग की सुन्दर परंपरा

महावीर की परंपरा में जन्म लेने वाले बालक को बचपन से ही सात कुव्यसनों के त्याग के संस्कार मिलना बहुत बड़ी विरासत है। जुआ, मांस, मद्य, वेश्यागमन, शिकार, चोरी एवं परस्त्री रमण. ये सात कुव्यसन न होन पर समाज के समृद्ध होने में आश्चर्य क्या है ?

जीव स्वयं अपने भाग्य का विधाता :

दूसरी बात यह भी है कि महावीर के सिद्धान्त के अनुसार स्वयं का सुख-दुःख मनुष्य को स्वयं के कर्मों के अनुसार ही मिलता है। किसी महाशक्ति को प्रसन्न करके आलसी बने रहने की प्रेरणा भी महावीर के मार्ग में नहीं मिलती है।

शाकाहार भोजन आज के युग की आवश्यकता

यद्यपि महावीर के समग्र सिद्धान्तों एवं दर्शन की तुलना में शाकाहार एक साधारणसी बात है किन्तु दुनिया की नजरों में महावीर के अनुयायियों के साथ शाकाहार भोजन विशेष रूप से जुड़ा हुआ है। कुछ वर्षों तक अमरीका में रहने से दुनिया के कई देशों के विद्वानों एवं सामान्य नागरिकों की जिज्ञासा एवं सोच जानने का अवसर लेखक को मिला है। अमरीका में कई व्यक्तियों ने जब यह जाना कि में महावीर में आस्था रखता हूं तो उन्होंने शाकाहार भोजन एवं नग्न दिगम्बर मुनिराज आदि के बारे में जिज्ञासाएं व्यक्त की। अमरीका में ही एक स्थान पर मुझे एक विशेष अनुभव यह भी हुआ कि जैसे ही मैंने आलू खाने से मना किया साथ वाले अमरीकन ने पूछा कि क्या आप जैन हैं ?

शाकाहार भोजन की महत्ता वैज्ञानिक अनुसन्धान के साथ साथ उजागर होती जा रही हे। कुछ वर्षों पूर्व ऐसा प्रचार होता था कि शाकाहारी भोजन अपूर्ण है। अण्डे एवं मांस के बड़े २ उद्योगों ने कई वर्षों तक यह प्रचार करवाया कि

बलशाली होने के लिये इन वस्तुओं का सेवन आवश्यक है। प्रचार इतना हुआ कि कई महावीर के अनुयायियों को भी शाकाहार की श्रेष्ठता पर शंका होने लगी।

किन्तु सांच को आंच नहीं। बढ़ते हुए हृदयरोगों के कारणों का पता लगाते हुए पश्चिम जगत के वैज्ञानिकों ने पाया कि भोजन में कोलेस्टराल की अधिक मात्रा हानिकारक है। कोलेस्टराल की मात्रा आज के वैज्ञानिकों के अनुसार 300 मिलीग्राम प्रतिदिन या इससे भी कम एक सामान्य व्यक्ति के लिये है। दोनों समय एक एक गिलास (250 ग्राम) दूध व 40 ग्राम शुद्ध घी सहित शाकाहारी भोजन करने वालों के भोजन में कोलेस्टराल की मात्रा प्रतिदिन 250 मिलीग्राम से कम यानी वैज्ञानिकों द्वारा निर्धारित सीमा ही होती है। जबकि प्रतिदिन एक अण्डा व औसत स्तर का मांसाहारी भोजन करने वाला प्रतिदिन 500 मिलीग्राम से भी अधिक कोलेस्टराल अपने पेट में पहुंचा देता है जो कि निर्धारित सीमा मे बहुत ज्यादा है। अतः हानिकारक है। (एक अण्डे में ही 275 मिलीग्राम कोलेस्टराल होता है जबकि एक अण्डे जितनी केलोरी प्रदान करने वाले 10 ग्राम शुद्ध घी में कोलेस्टराल की मात्रा तीस (30) मिलीग्राम ही होती है।) आवश्यक प्रोटीन की मात्रा भी शाकाहार में दूध, आटे व दाल के सेवन से उपलब्ध हो जाती है। इसी प्रकार के व अन्य कई आंकड़ों के आधार पर अमरीकन मेडिकल एशोसिएशन द्वारा लिखित पुस्तक (फेमिली मेडिकल गाइड) में स्पष्ट लिखा है कि कुल मिलाकर शाकाहारी भोजन मांसाहारी भोजन से अधिक श्रेष्ठ है।

अमरीका में सिगरेटों की खपत में तेजी से कमी

महावीर का नशाविरोधी संदेश न केवल आध्यात्मिक विकास के लिये उपयोगी है अपितु आज पता चलता है कि स्वास्थ्य के लिये भी यह महत्त्वपूर्ण है। तंबाकू से केंसर व हृदयरोग बढ़ने के कारण अब ऐसे हजारों ऑफिस अमरीका में आज हैं जहां सिगरेट पीने की या तमाखू का सेवन करने की सख्त मनाई है। मजेदार बात यह है कि पन्द्रह वर्ष पहले ही ऐसे भवनों में धड़ल्ले से सिगरेटें फूंकी जाती थीं व सिगरेट खरीदने के लिये दूर न ज़ाना पड़े इस हेतु स्थान स्थान पर यहां तक कि कालेज के अन्दर भी सिगरेट बेचने वाली मशीनें होती थीं। आज तो अमरीका में कुछ घण्टों वाली हवाई जहाज की यात्रा में भी धूम्रपान की सख्त मनाई है।

सिगरेट से आगे शराब पर भी वैज्ञानिकों का ध्यान गया है। 1989 से अमरीकी सरकार ने यह कानून भी बना दिया है कि शराब की बोतल पर यह छापना अनिवार्य कर दिया है कि शराब गर्भवती महिलाओं के लिये हानिकारक है।

सारांश यह है कि एक-एक करके महावीर के संदेशों का मर्म आज विकसित देशों के वैज्ञानिकों एवं जनता को समझ में आता जा रहा है। भारत में कई व्यक्ति ऐसे हैं जिन्होंने अपने जीवन में कई अच्छी बातें परिवार की परंपरा के रूप में ग्रहण की हैं। किन्तु कई व्यक्ति वैज्ञानिक उपलब्धियों की चकाचौंध में यह मान बैठे हैं कि 50 वर्ष पूर्व अंग्रेज या अमरीकी जो करते थे या पुस्तकों में लिखते थे वही आदर्श है। ऐसे व्यक्तियों को थोड़ा यह सोचना उपयोगी हो सकता है कि आधुनिक वैज्ञानिक अनुसन्धान एवं आधुनिक जीवन की समस्याओं के आधार पर अंग्रेज या अमरीकी भी अब शाकाहार को मांसाहार की तुलना में अधिक श्रेष्ठ, नशे एवं मुक्त योनाचार को बुरा एवं परमात्मा में विश्वास को लाभप्रद मानने लगे हैं। एक जीता जागता प्रमाण यह भी इस क्रम में लिखना उचित होगा कि 1956 से अमरीका के प्रत्येक सिक्के एवं नोट पर 'In God We Trust' (परमात्मा में हम आस्था रखते हैं) लिखा जाने लगा है। प्रबल जन समर्थन के बिना इतना वजनदार वाक्य कोई भी प्रजातंत्र मे चुनी जाने वाली सरकार सरकारी मुद्रा पर अंकित नहीं कर सकती है। अतः सिक्कों एवं नोटों पर इस वाक्य का अस्तित्व स्पष्ट रूप से यह दर्शाता है कि अमरीका परमात्मा में विश्वास करने लगा है।

विचार

उक्त वर्णन के साथ-साथ यहां यह भी कहना उचित होगा कि ये सारी बातें तो महावीर के समग्र दर्शन का एक अत्यन्त छोटा भाग है। भोजन व रहन-सहन से भी अधिक वजनदार एवं महत्त्वपूर्ण बात है विचारों की शुद्धता। विचारों की अपवित्रता को भी भगवान महावीर ने भावहिंसा बताकर यह दर्शाया कि विचारों की अशुद्धि भी हिंसा है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक एवं चिकित्सक भी प्रमाणों के आधार पर धीरे-धीरे यह मानने लगे हैं कि कई बीमारियां मनुष्य के अपवित्र विचारों से पैदा होती हैं व कई बीमारियों की चिकित्सा अपवित्र विचारों को सुधार लेने पर बहुत सरल हो जाती हैं। उदाहरण के रूप में डॉ० वीस (weirs) का यह कथन ले सकते हैं जिसमें वे समझाते हैं कि जिन व्यक्तियों को जोड़ों एवं मांसपेशियों में दर्द बना रहता है वे व्यक्ति अपने किसी नजदीकी व्यक्ति से लगातार घृणा व शिकायत का भाव रख रहे होते हैं। डॉ० नार्मन विन्सेण्ट पील ने अपनी विश्वप्रसिद्ध पुस्तक 'दि पावर ओफ पाजिटिव थिंकिंग' में उक्त कथन को विस्तार से समझाया है।

आठ कर्मों की 148 प्रकृतियां एवं उनके बंध फल एवं उनके लिये

जिम्मेदार विचारों की चर्चा भगवान महावीर के उपदेशों में विस्तार से हुई है। आज के युग में भी लुइ हे (Louir Hay) जैसे मनोवैज्ञानिक 'आप अपनी जिंदगी को चंगा कर सकते हैं' (You can Heal your Life) जैसी पुस्तक में यह बताते हैं कि कौन से विचारों से पीठ में दर्द होता है, कौनसे विचारों से पेट की बीमारी आती है, कौनसे विचार एक्सीडेन्ट को निमंत्रण देते हैं, कौनसे विचारों से अमीरी आती हैं..... इत्यादि २। ऐसी पुस्तकों की संख्या भविष्य में बढ़ने की संभावनाएं बहुत हैं। आठ कर्मों के बंधने का मर्म जिसने समझ लिया उसके लिये ऐसी पुस्तकों की आवश्यकता कितनी रह जाती है ? जैसे असाता वेदनीय के कारणों को बताते हुए तत्वार्थसूत्र के 6 में आचार्य उमास्वामि बताते हैं कि-

दुःख-शोकतापाक्रन्दनवद्य परिदेवनान्यात्म परोभय स्थानान्यसद् वेद्यस्य ॥

(अपने में, दूसरे में या दोनों में विद्यमान दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध और परिदेवन ये असातावेदनीय के कारण है)।

आत्मा

खानपीन, रहन-सहन व विचारों के प्रभाव के बारे में इस वैज्ञानिक युग में जो कुछ भी अनुसंधान हुआ है उससे महावीर के उपदेशों की महत्ता बढ़ी है व बढ़ रही है। चिकित्सा विषय पर नोबुल पुरस्कार विजेता जार्ज वाल्ड (Georege wald) जैसे वैज्ञानिक यह भी मानने लगे हैं कि आत्मा भी पदार्थ है (उनके शब्दों में - 'That is the stuff of the universe')। इस गीत से बढ़ते हुए वह दिन भी दूर नहीं जब कई पश्चिमी दार्शनिक एवं वैज्ञानिक समयसार कलश के वाक्य-

'आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम् ' का मर्म समझकर अपने जीवन में महावीरत्व पर श्रद्धा पा सकेंगे।

अनुसन्धानों के परिप्रेक्ष्य में

ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में बहुत तेजी से विश्व में तरक्की हो रही है किन्तु कई कारणो से साधारण जनता न तो हमारे शास्त्रों का मर्म जान पाती है और न ही आधुनिक ज्ञान का रहस्य । इसका परिणाम यह होता है कि साधारण जनता को विरोधाभास प्रतीत होता है और वह या तो विज्ञान को धिक्कारता है या धार्मिक ज्ञान को व्यर्थ समझता है या वह इन दोनों से तटस्थ रहते हुए टी.वी एवं सिनेमा द्वारा चित्रित मार्ग को ही जाने-अनजाने में जीवन का उद्देश्य बना लेता है ।

हमारे महर्षियों ने जो मार्ग बताया है वह लाभदायक है व आधुनिक विज्ञान भी सत्य की खोज में लगा हुआ है व दुनिया केवल उतनी ही नहीं है जितनी हल्के-फुल्के समाचार पत्र, साहित्य एवं फिल्मी दुनिया में चित्रित होती है । इस कथन को स्पष्ट करने का इस लेख में अति संक्षेप प्रयास किया जा रहा है । लेख को दो भागो में विभक्त किया गया है भाग-1 में सामान्य रुचि के विषय चुने गये हैं व भाग-2 में विज्ञान की सूक्ष्म चर्चा की गई है।

भाग-1: सामान्य रुचि के विषय

(1) क्या पृथ्वी के अतिरिक्त अन्यत्र जीव है?

जैन करणानुयोग में शंका करते हुए सबसे वजनदार शंका यह होती है कि "स्वर्ग-नरक किसने देखा ? जो कुछ भी है वह इस पृथ्वी पर ही है।"

इस शंका का पूर्ण समाधान क्या विज्ञान कर सकेगा ? कब तक ? इन प्रश्नो का उत्तर देना कठिन कार्य है । किन्तु यह जानना उपयोगी होगा कि अब तक विज्ञान कितना जान गया है ।

1967 में औषधि विज्ञान का नोबल पुरस्कार प्राप्त करने वाले वैज्ञानिक जार्ज वाल्ड ने एक लेख[1] मे यह स्पष्ट बताया है -

"The Smallest estimate we would consider of the fraction of stars in the Milky Way that should have a planet that could support life is one per cent. That means a billion such places in our own home galaxy; and with a billion such galaxies within the reach of our telescopes,the already observed universe should contain at least a billion billion -10-places that can support life."

तात्पर्य यह है कि जार्ज वाल्ड के अनुसार 1000000000000000000 (एक के आगे 18 शून्य) से भी अधिक स्थान (पृथ्वी जैसे) इस ब्रह्माण्ड में है जहां जीवधारी होने की संभावना है ।

2. क्या दिन में भोजन करना व अण्डे-मांस,

1. Georege wald, "The cormology of Life and Mind", in "Synthesis of Science and Religion", edited by TD Singh and R. Gomatam, Published by The Bhaktivedanta Institute, SanFrancisco, Bombay, 1988

मद्य का त्याग लाभदायक है ?

चरणानुयोग के इन बिन्दुओं के संबन्ध में मेरे स्वयं के 4 वर्षों के अमरीका में रहकर वहां के जीवन को देखने, समझने व वहां के आधुनिक साहित्य के आधार पर कुछ संकेत यहां देना चाहूंगा-

(1) अमरीका की अधिकांश आबादी (80% से अधिक) शाम को 7 बजे से पूर्व अपना शाम का भोजन (dinner) ले लेती है । अमरीकी संस्कृति मे यह सांय भोज का समय मुख्यतया स्वास्थ्य एव सुविधा के कारण बना है ।

(2) आज मोटापा एवं कोलेस्ट्रल की समस्या अमरीका में इतनी बढ़ गई है कि लगभग प्रत्येक पत्र-पत्रिका में खानपीन के संबन्ध मे लेख प्रकाशित होते रहते हैं व एक स्वर मे लगभग सभी लेख अण्डे एवं मांस का प्रयोग हानिकारक बताते हैं । अण्डा अब अमरीका मे खलनायक हो गया है ।

(3) अमरीका मे सिगरेट का प्रचलन बहुत तेजी से कम हो रहा है । अमरीका में मैं जिस विश्वविद्यालय मे था वहां किसी भी भवन में कोई भी सिगरेट नहीं पी सकता । पहले मैने 1979-80 में जिस विश्वविद्यालय में सिक्के डालकर सिगरेट खरीदने वाली मशीनें देखी थीं, वे अब 1986-89 में देखने को नहीं मिलीं ।

(4) अमरीका मे सिगरेट का इतना विरोध होने के पहले बहुत वर्षों तक सिगरेट के पाकेट पर "धूम्रपान हानिकारक है"- ऐसी चेतावनी छापी गई थी । इसी तरह 1989 में अमरीकी सरकार ने शराब की बोतल पर भी अब यह चेतावनी छापने का कानून बनाया है कि "गर्भवती महिलाओं के लिए शराब हानिकारक है"।शराब उद्योग को यह पहला झटका लगा है ।

(5) एड्स रोग के प्रचलन के बाद अमरीकी जनता को यह एहसास हो गया है कि न केवल जुँआ, मांस, मद्य एवं चोरी बुरे है अपितु वेश्यावृत्ति, एवं कुशील भी इसी जन्म में जानलेवा बीमारी को जन्म देने वाले है । इस प्रकार जैन-चरणानुयोग ने जो सात व्यसन बताए एवं जिनका त्याग अधिकांश जैन परिवारों मे एक बच्चे को सहज ही विरासत में मिलता है उनमे से 6 व्यसनों को अमरीका ने बुरा मानना स्वीकार कर लिया है । शेष एक व्यसन- शिकार के बारे में भी इसी तरह कभी चेतना जाग्रत होगी ।

III. क्या बीसवीं सदी में कोई ऐसा नायक पैदा हुआ है जिसने 'अहिंसा परमोधर्म' की महिमा उजागर की हो ?

इस प्रश्न को मैं ताजा 'प्रथमानुयोग' के रूप में लेकर प्रथमानुयोग में वर्णित समस्त महापुरुषों के चरित्र को समझने की पात्रता बताना चाहता हूं ।

महात्मा गांधी ने जो सफल अहिंसात्मक आंदोलन चलाया उसके समक्ष आज विश्व के समस्त राजनेता नतमस्तक हैं । आइंस्टीन ने गांधीजी के बारे में एक स्थान पर लिखा है कि कुछ सदियों के बाद लोगों को इस पर विश्वास नहीं आयेगा कि ऐसा हाड़-मांस का पुतला इस धरती पर सचमुच में पैदा हुआ था । गांधी जी ने यह अहिंसा एवं अहिंसा के उपयोग की विधि श्रीमद् राजचन्द्र से जैन ग्रंथो के आधार पर सीखी थी ।

अमरीका से कुछ वर्ष पूर्व एक पुस्तक[2] प्रकाशित हुई जिसमें विश्व को सर्वाधिक प्रभावित करने वाले 100 व्यक्तियों की जीवनी एवं उनके

2 M.H. Hart, 'The 100 A ranking of the most influential persons in history.', Citadel Press Secaucus, New Jersey, 1987.

कार्य का वर्णन किया है । इन 100 में भगवान महावीर का नाम भी है व उनके प्रभाव के रूप में उस पुस्तक मे लेखक ने यह स्पष्ट लिखा है कि भगवान महावीर की अहिंसा को महात्मा गांधी ने अपनाकर न केवल भारत अपितु समस्त विश्व को प्रभावित किया है व हो सकता है 21 वीं सदी में इसकी और अधिक आवश्यकता एवं उपयोग हो ।

IV. वैज्ञानिक सृष्टि को किसी के द्वारा निर्मित नहीं मानते हैं । क्या जैन दर्शन इस आधुनिक वैज्ञानिक, विचारधारा से सहमत है?

सृष्टि ही क्यों, वैज्ञानिकों का तो यह मूल सिद्धान्त है कि 'ऊर्जा न तो पैदा की जा सकती है और न ही नष्ट की जा सकती है । केवल रूपान्तरण होता है।' जैन द्रव्यानुयोग इस मूल सिद्धान्त से पूर्णतः मेल खाता है । विषय अत्यन्त गंभीर होने के कारण विस्तार में न जाते हुए समयसांर की गाथा क्रं.104 द्वारा संकेत देना ही यहां उचित होगा ।

दव्यगुणस्स य आदा ण कुणदि पोग्गलमयम्हि कम्मम्हि ।
तं उभयमकुव्वंतों तम्हि कहं तस्स सो कत्ता ।।

अर्थात् आत्मा किसी भी पदार्थ को या उसके गुण को नहीं कर सकता है व इस अपेक्षा से वह कर्ता नहीं है ।

चारों अनुयोगों के व आधुनिक ज्ञान के कुछ ही चावलों को देखकर यह निर्णय नहीं लिया जा सकत है कि परमाणु बम या टी.वी. बनाने की विधि शास्त्रों में भी होनी चाहिए, और यदि नहीं है तो - - - । विशाल संसार, शाकाहारी भोजन, सात व्यसनों का त्याग, अहिंसा का महत्व, व मूलतः प्रत्येक द्रव्य की स्वतंत्रता घोषित करने वाले वैज्ञानिक चिन्तन व जैन दर्शन की समानता इस लेख में जिस प्रकार वर्णित की गई हैं उससे निश्चिततः यह धारणा सिद्ध होती है कि यह दर्शन केवल चर्चा का ही विषय नहीं अपितु यह आधुनिक युग में न केवल व्यक्ति के जीवन में अपितु समाज एवं राष्ट्र के जीवन में भी अत्यन्त लाभकारी है ।

भाग - 2 : सूक्ष्म वैज्ञानिक विषय

1. अनेक आत्माएं एक ही जगह पर

अनन्त आत्माएँ एक साथ रह सकती हैं । सिद्धालय मे अनन्तों सिद्ध एक साथ, एक के अन्दर एक, अपनी पृथक्-पृथक् सत्ता लिये हुए निवास करते हैं । जैन दर्शन के इस तथ्य की तुलना बोस-आइन्सटाइन सांख्यिकी (Bose-Einistein Statistics) से कर सकते हैं । सन् 1924 में बोस एवं आइन्सटाइन ने यह दर्शाया कि विशेष प्रकार के कई कण, जैसे प्रकाश के कण जिन्हें फोटान कहा जाता है, एक ही जगह पर एक के अन्दर एक, किन्तु पृथक्-पृथक् सत्ता लिये हुए, एक साथ रह सकते हैं । ऐसे कणों को बोसॉन (Boson) कहा जाता है । (आत्मा एवं बोसॉन की यह तुलना इस विशेष गुण के सन्दर्भ में ही समझना चाहिए) वस्तुतः आधुनिक विज्ञान का बोसॉन तो पुद्गल है जबकि आत्मा चेतन हैं ।)

2. असंख्य प्रदेशी लोकाकाश में अनन्तानन्त पुद्गल परमाणु

जैन दर्शन के अनुसार एक पुद्गल परमाणु का आयतन लोकाकाश के एक प्रदेश के बराबर होता है। लोकाकाश में असंख्य प्रदेश ही होते है, अनन्त नहीं। (जैन गणित की भाषा मे अनन्त तो असंख्य से अनन्त गुना होता है ।) अतः यदि एक प्रदेश में एक पुदग्ल परमाणु ही रह सकता हो तो असंख्य प्रदेशी लोकाकाश में असंख्य पुदगल परमाणु होने

चाहिए । जबकि जैन करणानुयोग के अनुसार लोकाकाश मे परमाणुओं की संख्या अनन्तानन्त होती है । यह विरोधाभास उपर्युक्त बोस-आइन्सटाइन सांख्यिकी द्वारा सरलता से हल हो जाता है । दूसरे शब्दों मे यो कहा जा सकता है कि असंख्य प्रदेशी लोकाकाश मे अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुओं का अस्तित्व स्वीकारने का अर्थ - यह है कि बोस-आइन्सटाइन सांख्यिकी के मूलभूत तत्व का ज्ञान होना ।

3. दो कालाणु एक साथ नहीं

जैन दर्शन के अनुसार रत्नों की राशि के ढेर की तरह पूरे लोकाकाश में असंख्य कालाणु लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर स्थित हैं । एक प्रदेश में दो या दो से अधिक कालाणु नहीं रह सकते । इस तथ्य की तुलना फर्मी-डिरेक सांख्यिकी (Fermi-Dirac Statristics) से कर सकते है । सन् 1926 में फर्मी एवं डिरैक ने यह दर्शाया था कि विशेष प्रकार के कुछ कण (जैसे इलेक्ट्रान) ऐसे होते हैं जो अलग-अलग ही रहते है । ऐसे कणों को फर्मीऑन (Fermion) कहा जाता है ।विज्ञान का यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि दो या दो से अधिक एक जैसे फर्मीऑन एक ही प्रदेश पर नहीं रह सकते हैं।

कालाणु एवं फर्मिऑन की यह तुलना भी इस विशेष गुण के सन्दर्भ में ही समझना चाहिये । वस्तुतः आधुनिक विज्ञान का फर्मिऑन तो पुद्गल है व कालाणु पुद्गल नहीं है ।

4. स्थान की क्वाण्टम प्रकृति

जैनाचार्यों के अनुसार पूरे लोकाकाश का आयतन 343 घन राजू है । इस आयतन में लोकाकाश के असंख्य प्रदेश है । (अनन्त नहीं) । इसका अर्थ यह हुआ कि लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश का आयतन शून्य न होकर शून्योतर (nonzero) है । चूंकि जैन करणानुयोग के अनुसार लोकाकाश के एक प्रदेश के भाग नहीं किये जा सकते है अतः यह शून्योतर आयतन यह दर्शाता है कि इससे कम आयतन संभव नहीं है। यह तथ्य 1925 में खोज क्वाण्टम सिद्धान्त में वर्णित प्रावस्था समष्टि (Phase space) के एक प्रदेश या प्रकोष्ठ (Cell) के न्यूनतम आयतन (h3) की याद दिलाता है । (यहां h = प्लांक-नियतांक है ।)

5. समय की क्वाण्टम प्रकृति

कालाणु की बात हम कर चुके है । कालाणु 'निश्चय काल द्रव्य' का द्योतक है । विज्ञान में वर्णित समय (time) जैन दर्शन का व्यवहार काल है । जैन दर्शन के अनुसार व्यवहार काल का भी एक न्यूनतम मान होता है जिसे एक 'समय' कहा जाता है । इस न्यूनतम काल यानी एक 'समय' को (timon) नाम देकर यह कहना चाहेंगे कि ऐसे टाइमान की कल्पना का क्वाण्टम सिद्धान्त स्वागत करता है ।

कई उदाहरण दिये जा सकते हैं । किन्तु मुख्य बात जो जैन दर्शन में समझने की है वह है -"आत्मा का अस्तित्व है व मैं आत्मा हूं-शरीर नहीं"। हमें हमारे लाभ के लिये इस कथन की पुष्टि हेतु भावी वैज्ञानिकों की राय की प्रतीक्षा करते हुए समय नहीं गंवाना है । अपितु जीवन की शान्ति हेतु यह स्वीकारना है कि

'केवलीं पण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि' ।

श्रमण

२.(ग) आधुनिक विज्ञान, ध्यान एवं सामायिक

*डॉ. पारसमल अग्रवाल**

१. प्रस्तावना

इस लेख में यह दर्शाया जा रहा है कि आज पश्चिम जगत् के वैज्ञानिकों ने ध्यान (Meditation) को अनेक भौतिक लाभों के जन्मदाता के रूप में स्वीकार कर लिया है। हजारों वर्षों से जैन संस्कृति में गृहस्थ के लिए भी प्रतिदिन सामायिक करने की परम्परा रही है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम ध्यान या सामायिक के महत्त्व को समझकर इसका लाभ लें। इस उद्देश्य की पूर्त्ति हेतु इस लेख में ध्यान के बारे में पश्चिम के वैज्ञानिकों एवं डॉक्टरों के अनुसन्धान से प्राप्त निष्कर्षों का वर्णन करने के उपरान्त सामायिक का विश्लेषण किया गया है। यह भी बताया गया है कि सामायिक ध्यान का एक विशिष्ट रूप है। सामायिक के विश्लेषण का उद्देश्य यह भी है कि हम सामायिक को एक रूढ़ि की तरह न करते हुए उसको समझकर करें ताकि उसका आध्यात्मिक एवं भौतिक लाभ तत्काल ही हमारे जीवन में दृष्टिगोचर हो सके।

२. आधुनिक विज्ञान एवं ध्यान

अमरीका के प्रिंसटन विश्वविद्यालय की एक वैज्ञानिक डॉ. पैट्रिशिया पैरिंगटन ने ध्यान मग्न अवस्था में कई व्यक्तियों पर कई प्रयोग इन वर्षों में किए। उनके निष्कर्ष उनके द्वारा लिखित पुस्तक 'फ्रीडम इन मेडिटेशन' में देखे जा सकते हैं। डॉ. पैरिंगटन ने सिद्ध किया कि ध्यान से ब्लडप्रेशर सामान्य होता है, कोलेस्टराल ठीक होता है, तनाव कम हो जाता है, हृदय रोगों की सम्भावना कम हो जाती है, याददाश्त बढ़ती है, डिप्रेशन के रोगी को भी लाभ होता है, इत्यादि.....इत्यादि।

अमरीका के ही उच्चकोटि के वैज्ञानिक डॉ. बेनसन ने भी इसी प्रकार के परिणाम उनके अनुसंधान कार्यों द्वारा प्राप्त की।

---

* कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर में १२-१३ मार्च १९९६ को आयोजित जैन विद्या संगोष्ठी में पठित लेख

अमरीका के डॉ. राबर्ट एन्थनी[1] ने इनकी पुस्तक 'टोटल सेल्फ कॉन्फिडेंस' में ध्यान के २४ भौतिक लाभ गिनाने के बाद यह बताया कि ये सब लाभ तो साइड इफेक्ट, यानी अनाज के उत्पादन के साथ घास के उत्पादन की तरह, है। मूल लाभ तो यह है कि आप ध्यान द्वारा आपकी आन्तरिक शक्ति के नजदीक आते हो। डॉ. एन्थनी ने जो २४ लाभ गिनाए उसमें तनाव व एलर्जी से मुक्ति, ड्रग एवं नशे की आदत से छुटकारा पाने में आसानी, अवस्थमा से राहत, ब्लडप्रेशर, कैंसर, कोलेस्ट्राल, हृदयरोग आदि में लाभ सम्मिलित है।

डॉ. आरनिश (अमरीका) ने उनकी पुस्तक 'रिवर्सिंग हार्ट डिज़ीज' में ध्यान का महत्त्व विस्तार से स्वीकार किया है। वे यह प्रचारित करते हैं कि हृदय रोग की बीमारी ध्यान से ठीक हो सकती है।

अमरीका में बहु प्रशंसित प्रख्यात चिकित्सक डॉ. दीपक चोपड़ा[2] ने उनकी पुस्तक 'परफेक्ट हेल्थ' में पृ. १२७ से १३० पर ध्यान को औषधि के रूप में वर्णन करते हुए प्रायोगिक आंकड़ों का विश्लेषण किया एवं कई तथ्यों का रहस्योद्घाटन किया। ४० वर्ष से अधिक उम्र के ध्यान करने वाले एवं ध्यान न करने वालों की तुलना करने पर उन्होंने यह पाया कि जो नियमित ध्यान करते हैं उन्हें अस्पताल जाने की औसत आवश्यकता लगभग एक-चौथाई (२६.३%) रह जाती है। इसी पुस्तक में डॉ. चोपड़ा ने ब्लडप्रेशर एवं कोलेस्टराल के आंकड़ों द्वारा भी यह बताया है कि ध्यान करने से कोलेस्टराल का स्तर गिरता है व रक्तचाप सामान्य होने लगता है। हृदय रोग के आंकड़े बताते हुए डॉ. चोपड़ा लिखते हैं कि अमरीका में हृदयरोग के कारण अस्पतालों में प्रवेश की औसत आवश्यकता ध्यान न करने वालों की तुलना में ध्यान करने वालों को बहुत कम, मात्र आठवां भाग (१२.७%) होती है। इसी प्रकार कैंसर के कारण अस्पताल में भर्त्ती होने की आवश्यकता ध्यान न करने वालों की तुलना में लगभग आधी (४४.६%) होती है। डॉ. चोपड़ा लिखते हैं कि आज तक ध्यान के मुकाबले में ऐसी कोई रासायनिक औषधि नहीं बनी है जिससे हृदय रोग या कैंसर की इतनी अधिक रोकथाम हो जाये। १९८० से १९८५ के एक ही चिकित्सा बीमा कम्पनी के सभी उम्रों के ६ लाख सदस्यों के आंकड़ों के विश्लेषण से यह भी ज्ञात हुआ कि ध्यान न करने वालों की तुलना में ध्यान करने वालों को डॉक्टरी परामर्श की औसत आवश्यकता आधी रही।

इस प्रकार के अनुसन्धान से प्रभावित होकर ही अमरीका के कई डॉक्टर कई बीमारियों के उपचार हेतु दवा के नुस्खे के साथ ध्यान का नुस्खा भी लिखने लगे हैं। ध्यान के नुस्खे के अन्तर्गत रोगी को ध्यान सिखाने वाले विशेषज्ञ के पास जाना होता है जो ध्यान सिखाने की फीस लगभग ६० डालर प्रतिघण्टा की दर से लेता है। अमरीका की कई चिकित्सा बीमा-कम्पनियाँ ध्यान पर होने वाले रोगी के इस खर्चे को दवा पर होने वाले खर्चे के रूप में मानने लगी हैं व इसकी भरपाई करती हैं।

अधिक क्या कहें, यहाँ तक कि डॉक्टरों के संगठन 'अमरीकन मेडिकल अशोसिएशन'[३] ने ८३२ पृष्ठों की एक पुस्तक 'फैमिली मेडिकल गाइड' लिखी है जिसमें पृ. २० पर विस्तार से यह बताया है कि जीवन को स्वस्थ बनाये रखने के लिए नियमित ध्यान करना चाहिए। पुस्तक के एक अंश का हिन्दी अनुवाद निम्नानुसार होगा:

"ध्यान करने की कई विधियाँ हैं किन्तु सभी का एकमात्र लक्ष्य है दिमाग को घबराहट एवं चिन्ताजनक विचारों से शून्य करके शान्त अवस्था प्राप्त करना।

कई संस्थाएँ एवं समूह ध्यान करना सिखाते हैं किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि आप वहाँ जाकर ध्यान करना सीखें। अधिकांश व्यक्ति अपने आप ही ध्यान करना सीख सकते हैं। निम्नांकित सरल विधि को आप अपना सकते हैं :

१. एक शान्त कमरे में आराम से आँख बन्द कर कुर्सी पर ऐसे बैठो कि पाँव जमीन पर रहे व कमर सीधी रहे।

२. कोई शब्द या मुहावरा ऐसा चुनो जिससे आपको भावनात्मक प्रेम या घृणा न हो (जैसे 'oak' या 'bring')। आप अपने होंठ हिलाए बिना मन ही मन इस शब्द का उच्चारण बार-बार दुहराओ। शब्द पर ही पूरा ध्यान दो, शब्द के अर्थ पर ध्यान नहीं देना है। इस प्रक्रिया को करते हुए यदि कोई विचार या दृश्य दिमाग में आए तो सक्रिय होकर उसे भगाने का प्रयास मत करो एवं उस दृश्य या विचार पर अपना ध्यान भी केन्द्रित करने का प्रयास मत करो। किन्तु बिना होठ हिलाए आप मन ही मन जो शब्द बोल रहे हो उसकी ध्वनि पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करो।

३. इस प्रक्रिया को प्रतिदिन दो बार ५-५ मिनट तक एक सप्ताह के लिए या जब तक कि दिमाग को अधिक समय के लिए विचार-शून्य करने के लिए प्रवीण न हो जाओ तब तक करो तत्पश्चात् ध्यान की अवधि धीरे-धीरे बढ़ाओ। शीघ्र ही देखोगे कि आप २०-२० मिनट के लिए ध्यान करने में समर्थ हो गए हो।

कुछ व्यक्तियों को शब्द के आश्रय के बदले किसी चित्र या मोमबत्ती आदि वस्तु का आश्रय लेना सरल लगता है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस प्रकार के किसी भी शान्त ध्यान से दिमाग को विचारों एवं चिन्ताओं से रिक्त करना।"

उक्त वर्णन अमरीकन मेडिकल एशोसिएशन ने दिया है। अन्य कई विशेषज्ञों के वर्णन भी अन्यत्र देखे जा सकते हैं। अब हम उस विधि की चर्चा करते हैं जो जैन संस्कृति में सामायिक नाम से हजारों वर्षों से प्रचलित है।

३. सामायिक

तत्त्वार्थसूत्र के ९वें अध्याय में सामायिक चरित्र[४] एवं उत्तम संहनन वाले जीवों के ध्यान[५] का उल्लेख हुआ है। वह कथन मुनि चरित्र की अपेक्षा से है। बिना व्यक्तिगत

अनुभूति के इस विषय पर लिखा जाना अर्थहीन सा होगा। यानी मुनि के दासानुदास की पंक्ति की मेरे जैसा सामान्य गृहस्थ इस विषय में लिखने में असमर्थ है। अत: गृहस्थो के लिए सामायिक की चर्चा करना ही इस लेख में अभीष्ट है।

गृहस्थों की ग्यारह प्रतिमाओं में तीसरी सामायिक प्रतिमा है :

दंसण वय सामाइय पोसह सचित्त रायभत्ते य।
बंभारंभपरिग्गह अणुमण उद्दिट्ठ देसविरदो य।।
(चारित्रपाहुड[६] - २२)

इसी प्रकार दूसरी प्रतिमा व्रतप्रतिमा है। इस प्रतिमा के अन्तर्गत ५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत एवं ४ शिक्षाव्रत, इस प्रकार १२ व्रत होते हैं। आचार्य समन्तभद्र ने सामायिक को ४ शिक्षाव्रतों में से एक शिक्षाव्रत बताया है। परम्परा यह भी है कि अव्रती श्रावकों को भी यह प्रेरणा दी जाती है कि चाहे वे व्रती श्रावकों की तरह नियमित सामायिक न करें किन्तु यथासम्भव सामायिक अवश्य करें।

सामायिक की इस चर्चा का उद्देश्य यह है कि जो सामायिक करते हैं या कर रहे हैं उनको सामायिक की विशेषताएं भली-भाँति ज्ञात हो सके ताकि सामायिक में व्यतीत किए गए समय का उन्हें पूरा-पूरा लाभ मिल सके। इसके अतिरिक्त इस लेख का उद्देश्य यह भी है कि जो सामायिक नहीं कर रहे हैं वे भी पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से, अपनी क्षमता एवं परिस्थिति के अनुसार, सामायिक जैसे बहुमूल्य रत्न को अपनाकर अपना आत्मिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य सुधार सकें।

सामायिक प्रक्रिया में निम्नांकित चरण होते हैं :

१. प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना, व समता भाव
२. वन्दना व स्तवन
३. कायोत्सर्ग एवं मन्त्र जाप

प्रचलित सामायिक पाठ[७] में इन सबका समावेश स्पष्ट दिखाई देता है। उक्त तीन चरणों में प्रथम दो चरण अन्तिम चरण की प्राप्ति की तैयारी हेतु हैं। तीसरा चरण यदि बीजारोपण है तो प्रथम एवं द्वितीय चरण भूमि को नर्म एवं नम बनाने हेतु हैं। सामायिक पाठ का मुख्य उद्देश्य प्रथम दो चरणों द्वारा व्यक्ति के तनाव को कम करना है।-विकल्पों के जाल से बंधा व्यक्ति सीधे कायोत्सर्ग एवं जाप में प्रवेश करने में कठिनाई अनुभव करता है। समायिक पाठ की निम्नांकित पंक्तियों पर विचार करना उपयोगी होगा:

जो प्रमादवशि होय विराधे जीव घनेरे ।

तिनको जो अपराध भयो मेरे अघ ढेरे ।।

सो सब झूठो होउ जगतपति के परसादै ।

जा प्रसाद तैं मिलै सर्व सुख दुःख न लाधै ।।६।।

इन पंक्तियो का सन्देश यही है कि जो कुछ पाप कार्य पूर्व में किए है वे 'झूठे' हो जाएं। बड़ा अजीब लगता है। जो कार्य हुआ है, वह तो हो चुका है, वह झूठा कैसे होगा? यहाँ जैनदर्शन कहता है कि जो तुझसे हुआ उसमें तू तो निमित्त मात्र था। तू उन किए गए कार्यों का स्वामी अपने आपको मानता है यह तुम्हारी बड़ी गलती है। पूर्वकृत अच्छे कार्य का अहंकार एवं बुरे कार्यों का दर्द इसलिए है कि तू उन कार्यों का कर्ता स्वयं को मान लेता है। कर्ता न बनकर मात्र निमित्त समझ लेने से अहंकार एवं दुःख हल्के हो सकते हैं। अतः ऐसी त्रुटिपूर्ण मान्यता को सामायिक के समय में झूठी मान्यता के रूप में स्वीकारना लाभप्रद एवं उचित है।

पूर्वकृत कर्मों से इस प्रकार निवृत्ति पाने को आचार्य कुन्दकुन्द ने प्रतिक्रमण कहा है—

शुभ और अशुभ अनेकविध, के कर्म पूरव जो किये ।

उनसे निवर्ते आत्म को, वो आतमा प्रतिक्रमण है ।।

समयसार ३८३//

इसी प्रकार सामायिक के अन्तर्गत प्रत्याख्यान का अर्थ होता है भविष्य के समस्त कार्यों से निर्वृत्ति, यानी भविष्य के संभावित कार्यों का भी अपने आपको कर्ता न मानकर निमित्त मानना। निमित्त की मान्यता स्वीकारते ही हमारी भावी कार्यसूची का भार कम हो जाता है। ज्ञानी को प्रति समय ऐसा ज्ञान रहता है। अज्ञानी किन्तु जिज्ञासु साधक कम से कम कुछ मिनट के लिए अपने आगामी कार्य के बोझ को सामायिक के समय उतारता है।

वर्तमान के कार्यों का कर्ता न मानना आलोचना कहलाता है। प्रत्याख्यान व आलोचना के सम्बन्ध में भी इस प्रकार की विवेचना समयसार[९] में आचार्य कुन्दकुन्द ने की है।

समताभाव के अन्तर्गत साधक यह स्वीकारता है कि कोई भी पदार्थ या व्यक्ति बुरा नहीं है। समस्त पदार्थों एवं व्यक्तियों से मोह, राग, द्वेष, कम से कम सामायिक के काल में छोड़ने का संकल्प इस प्रक्रिया में होता है। आचार्य योगीन्दु देव[१०] कहते है—

राग-द्वेष दो त्यागकर, धारे समताभाव ।

यह सामायिक जानना, भाखैं जिनवर राव ।।

बुध महाचन्द्र कृत सामायिक पाठ में बहुत ही सुन्दर शब्दों में कहा है—

इस अवशर में मेरे सब सम कंचन अरु त्रण ।
महल मसान समान शत्रु अरु मित्रहिं सम गण।।

जामन मरण समान जानि हम समता कीनी ।
सामायिक का काल जितै यह भाव नवीनी ।।१३।।

आचार्य कुन्दकुन्द प्रवचनसार[११] में समस्त अन्य द्रव्यों के प्रति माध्यस्थ भाव रखते हुए मात्र अपने आत्म-तत्त्व को ध्याने की प्रेरणा देते हैं—

जो सिद्धभत्तिजुत्तो उवगूहणगो दु सव्वधम्माणं ।
सो उवगूहणकारी सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ।।

इतना सब मस्तिष्क में प्रवेश करने पर एवं सामायिक के समय संकल्पपूर्वक इतना सब स्वीकारने की उत्कट भावना से हमारे तनाव कुछ ही मिनट में हल्के हो सकते हैं। इससे अगले चरण में तीर्थंकरों की वन्दना व स्तवनपूर्वक भक्ति के भावों से रहा सहा तनाव या विकल्पों का जाल भी कुछ समय के लिए हमारे मानस पटल से अदृश्य सा हो सकता है। भक्ति में ऐसी सामर्थ्य है। आचार्य कुन्दकुन्द समयसार[१२] में ये ही भाव निम्नानुसार व्यक्त करते हैं :

असुहोवओगरहिदो सुहोवजुत्तो ण अण्णदवियम्हि।
होज्ज मज्झत्थोऽहं णाणधगमप्पगं झाए ।।

अब अगला चरण है कायोत्सर्ग एवं मन्त्र-जाप का। कायोत्सर्ग ही सच्ची ध्यान की अवस्था है। विकल्पों को तोड़ने का विकल्प एवं भक्तिभाव का विकल्प भी इस चरण में न्यून हो जाता है। अपनी काया से भी पृथक् मात्र अपने चेतन-तत्त्व में स्थित होने का यह अवसर है। कायोत्सर्ग का अर्थ मात्र कायोत्सर्ग पाठ पढ़ना नहीं है। भोजन बनाने की विधि पढ़ने मात्र से भोजन नहीं बनता है। आचार्य अमृतचन्द्र का निम्नांकित कथन[१३] विशेष ध्यान देने योग्य है—

अयि कथमपि मृत्वा तत्त्वकौतूहलीसन् ।
अनुभव भवमूर्तेः पार्श्ववर्ती मुहूर्तम् ।।
(समयसार कलश -२३)

इस कलश में आचार्य अमृतचन्द्र अज्ञानी जिज्ञासु को उपदेश देते हुए प्रेरणा दे रहे हैं कि अरे भाई! तू तत्त्वों का कौतूहली होकर, यानी नाटक के रूप में ही सही, अपने आपको मृत मानकर एक मुहूर्त के लिए अपने शरीर का पड़ोसी अनुभव कर।

इस कायोत्सर्ग के काल को महर्षि महेश योगी की भाषा में भावातीत ध्यान कहा जा सकता है। कर्म सिद्धान्त की भाषा में इस काल में पाप कर्मों का पुण्य में संक्रमण व कई कर्मों की निर्जरा सम्भव है। आधुनिक वैज्ञानिक भाषा में यह कहा जा सकता है कि मन, वाणी एवं शरीर को विश्राम मिल गया है, आक्सीजन की खपत कम हो गई है, ब्लडप्रेशर सामान्य होने की दिशा में अग्रसर हो गया है, शरीर के समस्त पुर्जों का भटकाव रुकने से शरीर के पुर्जे स्वस्थ मार्ग की ओर बढ़ने लगे हैं। दार्शनिक जे. कृष्णमूर्त्ति[१४] की भाषा में 'alert and effortess' यानी 'सावधान किन्तु प्रयासरहित' अवस्था की उपलब्धि है। आचार्य अमृतचन्द्र की भाषा में विकल्पजाल से रहित साक्षात् अमृत पीने वाली अवस्था है।[१५] यह विश्व के ऊपर तैरने वाली अवस्था है जिसमें न तो कर्म किया जा रहा होता है और न ही प्रमाद होता है।[१६] अध्यात्म की भाषा में ध्यान, ध्याता एवं ध्येय में अभेदपने की अवस्था है। भक्ति की भाषा में— 'पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजां'।[१७]

यहाँ एक प्रश्न यह उपस्थित हो सकता है कि क्या इस स्तर की सामायिक हमसे सम्भव है? इसका उत्तर यही है कि प्रारम्भ में कठिन होता है। इसमें अभ्यास की आवश्यकता है। प्रारम्भ में विकल्प अधिक आते हैं किन्तु विकल्पों से थोड़ा भी परेशान होने की आवश्यकता नहीं है। जैसे ही लगे कि विकल्प में हम उलझ गये हैं वैसे ही प्रभुनाम के मन्त्र के सहारे पर मन लगाना चाहिए। ज्यों-ज्यों ज्ञाता-द्रष्टा भाव यानी साक्षीभाव विकल्पों के प्रति अपनाते रहेंगे त्यों-त्यों हमारी सामर्थ्य बढ़ती जायेगी। ५ मिनट से प्रारम्भ करते हुए कायोत्सर्ग का काल कुछ महीनों के अभ्यास के बाद २०-२५ मिनट तक बढ़ाया जा सकता है। ऐसा सम्भव है, इस बात की पुष्टि पूर्व वर्णित अमरीकन मेडिकल ऐशोसिएशन की पुस्तक भी करती है।

इतना सब पढ़ने के बाद ऐसा भी किसी को लग सकता है कि ऐसा वर्णन तो मुनियों के लिए सुनने में आता है। गृहस्थ अवस्था में इतना कैसे सम्भव हो सकता है? इसका उत्तर स्वयं अनुभव करके या शास्त्रों से प्राप्त किया जा सकता है। आचार्य समन्तभद्र रत्नकरण्डश्रावकाचार में स्पष्ट रूप से लिखते हैं[१८]—

सामयिके सारम्भाः परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेऽपि ।
चेलोपसृष्टमुनिरिव, गृही तदा याति यतिभावम् ।।

(रत्नकरण्डश्रावकाचार - १०२)

इसका अर्थ यह है कि सामायिक के समय गृहस्थ के आरम्भ एवं परिग्रह नहीं रहते है अतः उस समय गृहस्थ भी ऐसे ध्यानस्थ मुनि की तरह हो जाता है, जिस पर किसी ने उपसर्ग किया हो और कपड़े डाल दिए हों।

यहाँ इतना विशेष है कि ये कथन चरणानुयोग की अपेक्षा हैं। करणानुयोग की अपेक्षा गृहस्थ एवं मुनि में बहुत अन्तर रहता ही है।

४. सामायिक एवं ध्यान

आधुनिक प्रचलित ध्यान में किसी शब्द या चित्र या दृश्य के सहारे या बिना किसी सहारे अपने मस्तिष्क को विकल्पों से बचाया जाता है। सामायिक क्रिया में भी अन्ततोगत्वा निर्विकल्पता पर ही जोर है। फिर-भी निम्नांकित तथ्य ध्यान देने योग्य है :

१. अरिहंत की ध्यानस्थ मूर्ति के दर्शन जिसने किए हैं और बार-बार जिसे दर्शन करने का सुअवसर प्राप्त होता है उसके लिए ध्यान की दशा की प्राप्ति अधिक सरल हो सकती है।

२. माना कि धन १०० रु. है और धन १०० रु. है, इन दोनों में बहुत अन्तर है। अध्यात्म में यह मानने की आवश्यकता नहीं होती है कि मैं देह, मन, वाणी आदि से भिन्न हूँ। अध्यात्म में तो इसे एक सच्चाई के रूप में स्वीकारा जाता है। आचार्य कुन्दकुन्द प्रवचनसार[१९] में कहते हैं—

नाहं देहो न मनो न चैव वाणी न कारणं तेषां।

कर्त्ता न न कारयिता अनुमन्ता नैव कर्तृणाम् ।।

(प्रवचनसार संस्कृत छाया - १६०)

इसका भावार्थ यह है कि मैं न शरीर हूँ, न मन हूँ, न वाणी हूँ, न इनका कारण हूँ, न इनका कर्ता हूँ, न कराने वाला हूँ, और न ही करने वाले की अनुमोदना करने वाला हूँ। इस प्रकार के ज्ञान एवं आस्था से सामायिक प्रतिक्रमण आदि, भाव जाग्रत होना सरल हो जाते हैं एवं इससे विकल्पों में कमी अधिक सरलता से की जाती है। भौतिकवादी को इसके विपरीत स्थूल विकल्पों का ध्यान की प्रक्रिया में कुछ मिनट के लिए भी उपशम करना अधिक कठिन होता है।

३. सामायिक को प्रतिदिन करने की शिक्षा एवं संस्कार जहाँ हजारों वर्ष से दिये जाते हों वहाँ उसमें आस्था होने पर ध्यान का कार्य भी सुगम हो सकता है।

४. उपसंहार

सारांश यह है कि हृदय रोग, ब्लडप्रेशर, अनिद्रा, तनाव, कैंसर, एलर्जी आदि कई बीमारियों से बचाव एवं छुटकारा पाने तथा आत्म शान्ति एवं आध्यात्मिक लाभ हेतु प्रतिदिन एक-दो बार, एक-दो घड़ी के लिए एकान्त में बैठकर शरीर, मन एवं वाणी को एक साथ विश्राम देने का अभ्यास करना चाहिए। सामायिक के रूप में ऐसा करने का उपदेश जैनाचार्यों ने हजारों वर्षों पूर्व दिया है। यही बात आज के वैज्ञानिक एवं डॉक्टर

भी मेडिटेशन या ध्यान की शब्दावली में कह रहे हैं। जिसका लाभ प्रयोगों द्वारा वर्तमान मे देखा जा चुका है। नाम हम चाहे जो दें, मेडिटेशन कहें या भावातीत ध्यान कहें, प्रेक्षाध्यान करें या सामायिकध्यान कहें, महत्त्वपूर्ण यह है कि इसे हम जीवन में भौतिक एवं आत्मिक लाभ हेतु अपनाएँ।

सन्दर्भ

१. Robert Anthony, 'The ultimate secrets of total self confidence', (Berkley Books, New York, 1984)

२. Deepak Chopra, 'Perfect Health', (Harmony Books, New York, 1991)

३. The American Medical Association : Family Medical Guide, (Random House, New York, 1987).

४. सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसापराययथाख्यातमिति चारित्रं।
आचार्य उमास्वाति, तत्त्वार्थसूत्र, सूत्र ९.१८

५. उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानमांतर्मुहूर्तात्।। ९.२७
तत्त्वार्थसूत्र ९.२७

६. आचार्य कुन्दकुन्द, चारित्रपाहुड - गाथा २२

७. बुध महाचन्द्र कृत सामायिक पाठ 'कालं अनन्त भ्रम्यो जग में.....'

८. आचार्य कुन्दकुन्द, समयसार, गाथा ३८३

९. समयसार गाथा क्रं. ३८४ से ३८६

१०. आचार्य योगीन्दुदेव, योगसार, गाथा १००

११. आचार्य कुन्दकुन्द, प्रवचनसार, गाथा १५९

१२. आचार्य कुन्दकुन्द, समयसार, गाथा २३३

१३. आचार्य अमृतचन्द्र, समयसार कलश २३

१४. Asit Chandmal, The Times of India : The Sunday Reviews (Delhi) July 30, 1985, Page 8.
"*Krishnamurti said, 'Be totally alert, and make no effort.'.*"

१५. आचार्य अमृचतन्द्र, समयसार कलश क्रं. ६९ की अन्तिम २ पंक्तियाँ निम्नानुसार है:
"विकल्पजाक्तच्युतशान्तचित्तास्तएव साक्षादमृतं पिबंति"

१६. आचार्य अमृतचन्द्र, समयसार कलश क्र. १११ की अन्तिम २ पंक्तियाँ निम्नानुसार है :

"विश्वस्योपरि ते तरंति सततं ज्ञानं भवंत: स्वयं
ये कुर्वन्ति न कर्म जातु न वशं यांति प्रमादस्य च"

१७. आचार्य मानतुंग, आदिनाथ स्तोत्र, श्लोक क्र. ७

१९. आचार्य समन्तभद्र, रत्नकरण्डश्रावकाचार, श्लोक क्र. १०२

१९. आचार्य कुन्दकुन्द, प्रवचनसार गाथा क्र. १६०

प्रोफेसर, भौतिक विज्ञान विभाग
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(बी.- २२० विवेकानन्द कालोनी, उज्जैन म. प्र. ४५६ ०१०

वर्ष - 12, अंक - 4, अक्टूबर 2000, 67 - 74 से पुनर्मुद्रित

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

जैनागम, आधुनिक विज्ञान एवं हमारे दैनन्दिन जीवन में ध्यान

■ पारसमल अग्रवाल *

विशेष स्तम्भ – आगम का प्रकाश : जीवन का विकास

अर्हत् वचन की लोकप्रियता एवं समसामयिक उपयोगिता में अभिवृद्धि एवं इसके पाठकों को जिनागम के गूढ रहस्यों से सहज परिचित कराने–हेतु–हम एक स्तम्भ 'आगम का प्रकाश – जीवन का विकास' प्रारम्भ कर रहे है।

इस स्तम्भ के अन्तर्गत हम ऐसे लघु शोध आलेख या टिप्पणी प्रकाशित करेंगे जिनमें निम्नांकित विशेषताएँ हों -

1 जैनागम का कोई मूल उद्धरण अवश्य हो।

2 हमारे जीवन में सीधा उपयोगी हो। अर्हत् वचन के पाठक इस स्थल पर अपने जीवन के विकास / सुख / शांति के लिये कुछ प्राप्त करने के उद्देश्य से इस अंक की उत्सुकता से प्रतीक्षा करें व उन्हें अवश्य इससे कुछ शांति मिले।

3 जैन दर्शन के कोई कम प्रचारित या दबे हुए पक्ष की जीवन में महत्ता उद्घाटित होती हो।

4 नवीन वैज्ञानिक अनुसंधानों के परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण हो।

उपर्युक्त 4 बिन्दुओं में प्रथम दो आवश्यक हैं व शेष 2 आवश्यक तो नहीं किन्तु हो जाये तो अच्छा है। वर्ष - 12, अंक - 3, जुलाई 2000 में हम जैनागम में प्राणायाम एवं ध्यान - पारसमल अग्रवाल लेख प्रकाशित कर चुके हैं।

— सम्पादक

प्रस्तावना

मैडिटेशन या ध्यान द्वारा स्वास्थ्य - सुधार एवं स्वास्थ्य - रक्षा कुछ वर्षों में पश्चिम जगत में भारतीय व्यक्तियों के माध्यम से प्रारम्भ होकर प्रचलित हो रही है। इस विषय में कई प्रश्न पैदा होते हैं - ध्यान कैसे किया जाये? ध्यान क्या वास्तव में लाभदायक है? जैनाचार्यों का ध्यान के बारे में क्या मत है? एवं इसका आध्यात्मिक पक्ष क्या है? इस लेख में इन बिन्दुओं पर संक्षिप्त चर्चा प्रारंभ करने के पूर्व यह जानना उचित होगा कि जैनाचार्यों का प्रमुख उद्देश्य आत्मिक लाभ रहा है व आधुनिक पाश्चात्य जगत का उद्देश्य स्वास्थ्य लाभ है। आत्मिक लाभ के साथ जो पुण्य बंध एवं पापों का क्षय होता है उसमें स्वास्थ्य लाभ हो जाना जैनाचार्यों ने भी वर्णित किया है (किन्तु उनके लिए यह गौण बात थी)।

इस लेख के प्रथम भाग में ध्यान का जैन शास्त्रों के अनुसार वर्णन करने के उपरान्त भाग 2 में यह बतायेंगे कि इस शास्त्रीय वर्णन के अनुसार एक सामान्य व्यक्ति के लिए सरल शब्दों में ध्यान का विवरण क्या है। अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन द्वारा वर्णित ध्यान की विधि का विवरण भी इस भाग में किया है। भाग 3 में हम यह बतायेंगे कि आधुनिक वैज्ञानिक ध्यान के विषय में क्या कहते हैं।

* Chemical Physics Group, Department of Chemistry, Okalahoma State University, STILLWATER OK 74078 U.S.A.

तत्त्वार्थ सूत्र में आचार्य उमास्वामी ने 4 प्रकार के ध्यान[1,2] बताए है -

आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ॥ तत्त्वार्थ सूत्र 9 28 ॥

भावार्थ : ध्यान 4 प्रकार के होते है -
1) आर्त्त ध्यान (2) रौद्र ध्यान (3) धर्म ध्यान (4) शुक्ल ध्यान।

इन चारों मे से शुक्ल ध्यान[3] तो श्रुत केवली एव केवली के ही होता है। धर्म ध्यान प्रमुखतया मुनिराज[4] के होता है व सम्यग्दृष्टि गृहस्थ[5] के भी संभव है। आर्त्तध्यान व रौद्र ध्यान तो गृहस्थ अवस्था में सामान्यतया चलता ही रहता है।[6]

इच्छित वस्तु या व्यक्ति का वियोग होने से, अप्रिय वस्तु या अप्रिय व्यक्ति के मिलने से, रोग या कष्ट आने से व चाह की ज्वाला में जलमें सम्बन्धी जो चिन्तवन होता है वह आर्त्त ध्यान कहलाता है।[7]

हिंसा में लाभ, झूठ में लाभ, चोरी में लाभ व भोग सामग्री की रक्षा करने में लाभ के चिन्तवन को रौद्र ध्यान कहा जाता है।[8]

सामायिक पाठ में कहा है कि **'आर्त्त रौद्र द्वय ध्यान छाडि करहूं सामयिक'**। सामायिक धर्म ध्यान का एक रूप है।[9] । आर्त्त, रौद्र ध्यान से पाप का बंध होता है। इनको छोड़कर धर्म ध्यान करने से पाप का पुण्य में संक्रमण व पापों का क्षय होता है।

आत्मा, परमात्मा, कर्म व्यवस्था, सात तत्त्व, छः द्रव्य आदि का वीतराग भाव की प्रधानतापूर्वक व आर्त्त रौद्र ध्यान के अभाव सहित चिन्तवन धर्म ध्यान के अन्तर्गत आते हैं। भाग 3 के प्रकरण को ध्यान में रखते हुए धर्म ध्यान के एक भेद संस्थान विचय धर्मध्यान के एक प्रभेद **पदस्थ ध्यान**[10] का विवेचन यहां करना उचित होगा। इस संदर्भ में पिण्डस्थ[11], कपस्थ[12], रूपातीत[13], आज्ञाविचय[14], अपायविचय[15], विपाक विचय[16], संस्थान विचय[17] आदि का विवरण जानना भी उपयोगी होगा जिन्हें अन्यत्र देखा जा सकता है।

पदस्थ धर्म ध्यान के अन्तर्गत आर्त्त ध्यान एवं रौद्र ध्यान छोड़कर ॐ, या णमोकार मंत्र, या किसी पवित्र मंत्र या अकारादि स्वर, या ककारादि व्यंजन के अवलंबन पूर्वक ध्यान होता है। आचार्य शुभचन्द्र के निम्नांकित दो श्लोकों द्वारा पदस्थ ध्यान का आशय अधिक स्पष्ट हो सकता है -

पदान्यालम्ब्य पुण्यानि योगिभिर्यद्विधीयते।
तत्पदस्थं मतं ध्यानं विचित्रनय - पारगैः ॥ ज्ञानार्णव - 38.1॥

अर्थ : जिसको योगीश्वर पवित्र मन्त्रों के अक्षर स्वरूप पदों का अवलम्बन करके चिन्तवन करते हैं, उसको अनेक नयों के पार पहुंचने वाले योगीश्वरों ने पदस्थ ध्यान कहा है।

द्विगुणाष्टदलाम्भोजे नाभिमण्डलवर्तिनि।
भ्रमन्तीं चिन्तयेद्ध्यानी प्रतिपत्रं स्वरावलीम्॥ ज्ञानार्णव - 38.3॥

अर्थ : ध्यान करने वाला पुरुष नाभिमंडल पर स्थित सोलह दल (पंखड़ी) के कमल में प्रत्येक दल पर क्रम से फिरती हुई स्वरावली का (अर्थात् अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः) चिन्तवन करे।

इसी सर्ग में आचार्य शुभचन्द्र ने ॐ, णमोकार मंत्र सहित कई मंत्रों की चर्चा

करते हुए साधक को मंत्र चुनने के विकल्प दिए है।

सामान्य बुद्धि से यहा एक प्रश्न आ सकता है कि किसी अक्षर 'अ' या 'आ' के ध्यान का क्या लाभ? इसका एक उत्तर शायद यह भी हो सकता है कि मन को जिस तरह भी आर्त्त-रौद्र ध्यान से हटाकर स्थिर किया जा सकता है उस तरह स्थिर करना अपने आप में एक ध्यान है। मन की स्थिरता न केवल आत्मदर्शन हेतु आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है किन्तु आज कई प्रयोगो से यह सिद्ध हो गया है कि यह मन की स्थिरता कई रोगो की औषधि भी है। आध्यात्मिक भाषा मे यह कहा जा सकता है कि मन की स्थिरता से राग-द्वेष मन्द होते है व पापकर्मो का पुण्य मे संक्रमण होता है जिसमें आत्मविकास के अतिरिक्त रोगों का क्षय भी हो सकता है। ज्ञानार्णव में आचार्य शुभचन्द्र कहते हैं -

अवर्णस्य सहस्रार्द्धं जपन्नानन्दसंभृतः।
प्राप्नोत्येकोपवासस्य निर्जरां निर्जिताशयः॥ 38.53॥

अर्थ : जो अपने चित्त को वश में करके आनन्द से 'अ' इस वर्ण मात्र का पांच सौ बार जप करता है, वह एक उपवास निर्जरारूप फल को प्राप्त होता है।

इसी ग्रन्थ में 41 वे सर्ग में आचार्य शुभचन्द्र ने यह वर्णित किया है कि धर्म ध्यान के प्रभाव से भौतिक सुख सामग्री, निरोग शरीर, अहमिन्द्र, सुरेन्द्र व परंपरा से मोक्ष प्राप्ति होती है।[18]

भाग 2 : सामान्यजन ध्यान का लाभ कैसे लें?

जैनागम के अनुसार धर्म ध्यान तो ज्ञानी सम्यग्दृष्टि के ही संभव है। प्रश्न यह उठता है कि जैसे सूर्य का उदय होने के पहले ही ऊषाकाल में प्रकाश होने लगता है या रात्रि में भी एक दीपक से अंधकार में थोड़ी कमी हो जाती है उसी प्रकार एक सामान्य व्यक्ति जिसके सम्यक्त्व की किरण अभी प्रकट नहीं हुई है वह इस ध्यान की चर्चा का लाभ मिथ्यात्व की रात्रि में भी किस प्रकार ले सकता है इच्छाओं एवं वासनाओं की चंचलता को रोककर किसी एक शब्द या मंत्र पर ध्यान केन्द्रित करने से लाभ संभव है ऐसा पश्चिम जगत में कई प्रयोगों से प्रमाणित हुआ है। प्रिंसटन विश्वविद्यालय, अमरीका की पैट्रिशिया कैरिंगटन[19] ने यह बताया कि ध्यान के भौतिक लाभ तो थोड़ा ध्यान करने से भी होते हैं ; किन्तु प्रतिदिन एक घंटे से अधिक ध्यान करने पर व्यक्ति आध्यात्मिक होने लगता है। पश्चिम में ध्यान का भौतिक लाभ आज लाखों व्यक्ति ले रहे हैं। हजारों लेख व दर्जनों पुस्तकें ध्यान के बारे में पश्चिम में उपलब्ध हो रही हैं। जीवनोपयोगी जो भी पत्रिकाएँ अमेरिका में प्रकाशित होती हैं उनके लगभग प्रत्येक अंक में ध्यान की शिक्षा किसी-न-किसी रूप में होती है। कई अनुभवी आधुनिक एवं पुरातन विद्वान् ध्यान के बारे में विभिन्न विधियाँ बताते हैं। जैसे वस्त्र कई प्रकार के होते हुए भी यह विशेषत. रखते हैं कि वे शरीर को ढकते हैं व सर्दी-गर्मी से रक्षा करते हैं, उसी प्रकार ध्यान की विधियों की भी मुख्य विशेषताएँ निम्नांकित होती हैं -

1. आर्त्तध्यान में कमी यानी अपनी परेशानियों, समस्याओं व अपनी इच्छाओं के चिन्तवन में कमी।
2. रौद्रध्यान में कमी यानी पाप कार्यो की सफलता के चिन्तवन में कमी व भौतिक उपलब्धियों के नशे में कमी।

3 मन को परमात्मा के रूप या किसी दृश्य या किसी शब्द (मंत्र) या शब्द-समूह या स्वयं की श्वॉस पर लगाकर केन्द्रित करना।

4 ध्यान करते हुए मन भटक जाये तो स्वयं को नहीं धिक्कारना या खेद नहीं करना किन्तु जैब भी लगे कि मन भटक गया है तब वापस अपने चुने हुए मंत्र पर मन को ले आना।

5 उचित शान्त वातावरण व आसन (सीढ की हड्डी टेड्डी न हो, पेट ज्यादा भारी न हो)। सोने के ठीक पहले नम्बा ध्यान न हो अन्यथा ताजगी आने से निद्रा देरी से आयेगी।

आधुनिक डाक्टर भी प्रतिदिन ध्यान करने का सुझाव देते हैं। यह बात इस आधार पर भी कही जा सकती है कि अमेरिका के डाक्टरों की सर्वमान्य संस्था - अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन द्वारा लिखित 832 पृष्ठों की पुस्तक - 'फैमिली मेडिकल गाइड'[20] के पृष्ठ 20 पर एक सामान्य व्यक्ति को प्रतिदिन ध्यान करने की सलाह दी है। ध्यान करने की विधि जो उस पुस्तक में प्रकाशित है उसका हिन्दी अनुवाद निम्नानुसार है -

'ध्यान करने की कई विधियाँ हैं किन्तु सभी का एकमात्र लक्ष्य है दिमाग की घबराहट एवं चिन्ताजनक विचारों से शून्य करके शान्त अवस्था प्राप्त करना।'

'कई संस्थाएँ एवं समूह ध्यान करना सिखाते हैं किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि आप वहाँ जाकर ध्यान करना सीखें। अधिकांश व्यक्ति अपने आप ही ध्यान करना सीख सकते हैं। निम्नांकित सरल विधि को आप अपना सकते है -

1. एक शान्त कमरे में आराम से आँख बन्द कर कुर्सी पर ऐसे बैठो कि पाँव जमीन पर रहें व कमर सीधी रहे।
2. कोई शब्द या मुहावरा ऐसा चुनो जिससे आपको भावनात्मक प्रेम या घृणा न हो (जैसे OAK या BRING)। आप अपने होंठ हिलाये बिना मन ही मन इस शब्द का उच्चारण बार-बार दुहराओ। शब्द पर ही पूरा ध्यान दो, शब्द के अर्थ पर ध्यान नहीं देना है। इस प्रक्रिया को करते हुए यदि कोई विचार या दृश्य दिमाग में आये तो सक्रिय होकर उसे भगाने का प्रयास मत करो एवं उस दृश्य या विचार पर अपना ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास मत करो; किन्तु बिना होंठ हिलाये आप मन ही मन जो शब्द बोल रहे हो उसकी ध्वनि पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करो।
3. इस प्रक्रिया को प्रतिदिन दो बार 5-5 मिनिट एक सप्ताह के लिये या जब तक कि दिमाग को अधिक समय के लिये विचार-शून्य करने के लिये प्रवीण न हो जाओ तब तक करो। तत्पश्चात् ध्यान की अवधि धीरे-धीरे बढ़ाओ। शीघ्र ही देखेंगे कि आप 20-20 मिनिट के लिये ध्यान करने में समर्थ हो गये हैं।

कुछ व्यक्तियों को शब्द के बदले किसी चित्र या मोमबत्ती आदि वस्तु का आश्रय लेना सरल लगता है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस प्रकार के किसी भी शान्त ध्यान से दिमाग को विचारों एवं चिन्ताओं से रिक्त करना।'

भाग 1 में वर्णित ध्यान का विवेचन एवं उक्त अमेरिकन मेडिकल एशोसिएशन की विधि व पूर्ववर्णित ध्यान की विशेषताओं को समझने के बाद एक व्यक्ति ध्यान का शुभारम्भ अपने जीवन में कर सकता है। सावधानी यह रखना है कि प्रारम्भ में यह लगभग 5 मिनिट के लिये हो व धीरे-धीरे समय 20-30 मिनिट तक बढ़ाया जाये। मानसिक रोगियों को मार्गदर्शक की सहायता व प्रामाणिक व्यक्ति की अनुमति के बिना ध्यान नहीं करना

चाहिये। ध्यान करने हेतु कौनसा मत्र या आसन या समय श्रेष्ठ है यह व्यक्ति स्वयं धीरे - धीरे अनुभव द्वारा सीख सकता है। आधुनिक विद्वानो का मत है कि व्यक्ति की रुचि एव परिस्थिति के अनुसार मंत्र, आसन, समय आदि में बदलाव संभव है। अध्यात्म में भी कई मत्रों की विविधता आचार्यो ने वर्णित की है।

मन्दिर में प्रातःकाल खाली पेट व उचित आसनपूर्वक माला फेरने की परम्परा जैन संस्कृति में है। पूजा के समय बीच - बीच में 9 बार णमोकार मंत्र के जाप (लगभग 2 मिनिट) की परम्परा भी सुविदित है। ये पदस्थ ध्यान के ही रूप हैं जो अति लाभदायक हैं आज के नये प्रयोग यह बताते हैं कि ये रूढ़ि मात्र न होकर परम रसायन हैं।

प्रश्न : मन भटकता है। मुख्य समस्या यह है कि मन की भटकन को कैसे रोका जाये ?

जैसे बड़े इन्टरव्यू या व्यापारिक निर्णय करते समय तत्काल बड़े लाभ की संभावना दिमाग में होने के कारण एक गृहस्थ उस समय उसकी अन्य समस्याएँ भूल जाता है, जैसे परीक्षा का पेपर देते समय एक विद्यार्थी इतना तल्लीन हो जाता है कि उसे कल का पेपर याद नही आता है,. उसी प्रकार ध्यान से भौतिक लाभ पर पक्का विश्वास करते हुए पश्चिम में कई व्यक्ति ध्यान के समय मन की भटकन को कम करने में समर्थ हो जाते हैं। आध्यात्मिक विधि हेतु धर्मध्यान के विवरण में जो धार्मिक तथ्य बताये हैं उनका बारम्बार चिंतवन करवे, पदस्थ ध्यान करने के पहले मन को इतना पक्का कर लेना होता है कि आत्मा तो जीवन की समस्याओं से परे है। समस्याएँ एवं उपलब्धियाँ क्षणिक हैं ; किन्तु आत्मा ध्रुव है, आत्मा तो सच्चिदानन्दघन है। इनको मात्र समझना पर्याप्त नहीं है। इन तथ्यों पर पूर्ण विश्वास ध्यान के पूर्व ताजा करना होता है तभी आर्त्त व रौद्रध्यान से मन हटेगा व मन की चंचलता कम होगी।

भाग 3 : ध्यान के भौतिक लाभ - आधुनिक विद्वानों की दृष्टि में

सम्यग्दृष्टि के धर्म ध्यान से न केवल आध्यात्मिक लाभ होता है अपितु भौतिक लाभ भी होता है - ऐसा आचार्यो ने कई स्थलों पर वर्णित किया है।

सामान्य गृहस्थों द्वारा ध्यान करने से लाभ के भी पश्चिम जगत में कई प्रयोग हुए हैं। प्रिंसटन विश्वविद्यालय की एक वैज्ञानिक डॉ. पैट्रिशिया कैरिंगटन[21] ने ध्यान मग्न अवस्था में कई व्यक्तियों पर कई प्रयोग किए। ध्यान अवस्था में ऑक्सीजन की खपत में कमी मापी जा चुकी है व मस्तिष्क तरंगों में परिवर्तन भी यंत्र द्वारा देख सकते हैं। ध्यानावस्था में मस्तिष्क अल्फा अवस्था में आ जाता है। उपकरणों द्वारा ध्यान मग्न अवस्था एवं सामान्य विश्राम अवस्था में अंतर देखा जा सकता है। डॉ. कैरिंगटन के कई निष्कर्ष उनके द्वारा लिखित पुस्तक 'फ्रीडम इन मेडिटेशन' में देखे जा सकते हैं। उन्होंने बताया कि ध्यान से ब्लडप्रेशर सामान्य NORMAL होने लगता है, कोलेस्टराल ठीक होता है, तनाव कम होता है, हृदय रोगों की संभावना कम होती है, याददाश्त बढ़ती है, डिप्रेशन के रोगी को भी लाभ होता है इत्यादि।

अमरीका के हारवर्ड मेडिकल स्कूल के वैज्ञानिक चिकित्सक डॉ. हर्बर्ट बेन्सन[22] के प्रयोग एवं उनकी पुस्तकें (1) The Relaxation Response (2) Timeless Healing भी ध्यान के सन्दर्भ में विश्वविख्यात हैं। सैकड़ों व्यक्तियों पर ध्यान के प्रयोगों द्वारा उन्होंने ध्यान व प्रार्थना पूजा के लाभ प्रमाणित किए हैं।

डॉ. आरनिश[23] (अमरीका) ने उनकी पुस्तक 'रिवर्सिंग हार्ट डिजीज' में ध्यान का

महत्व विस्तार से स्वीकार किया है। वे यह प्रचारित करते हैं कि हृदय रोग की बीमारी ठीक करने में ध्यान भी एक प्रभावी औषधि है।

अमरीका की प्रसिद्ध पत्रिका टाइम ने 20 वी शताब्दी के सर्वश्रेष्ठ 100 Icons and Heroes में एक स्थान डॉ दीपक चौपड़ा को दिया है। डॉ. दीपक चौपड़ा ने उनकी पुस्तक 'परफेक्ट हेल्थ'[24] में पृ. 127 से 130 पर ध्यान को औषधि के रूप में वर्णन करते हुए प्रायोगिक आँकड़ो का विश्लेषण किया एव कई तथ्यों का रहस्योद्घाटन किया। 40 वर्ष से अधिक उम्र के ध्यान करने वाले एवं ध्यान न करने वालों की तुलना करने पर यह पाया कि जो नियमित ध्यान करते हैं उन्हें अस्पताल जाने की औसत आवश्यकता लगभग एक चौथाई (26.3 %) रह जाती है। इसी पुस्तक में डॉ. चौपड़ा ने बताया कि ध्यान से ब्लडप्रेशर एवं कोलेस्टराल सामान्य होने लगता है। हृदय रोग के आंकडे बताते हुए डॉ चौपडा लिखते हैं कि अमरीका में हृदयरोग के कारण अस्पतालों में प्रवेश की औसत आवश्यकता ध्यान न करने वालों की तुलना में ध्यान करने वालों को बहुत कम, मात्र आठवाँ भाग (12.7%) होती है। इसी प्रकार कैंसर के कारण अस्पताल में भर्ती होने की आवश्यकता ध्यान न करने वालों की तुलना मे लगभग आधी (44.6%) होती है। डॉ. चौपडा लिखते हैं कि आज तक ध्यान के मुकाबले में ऐसी कोई रासायनिक औषधि नही बनी है जिसमें हृदय रोग या कैंसर की इतनी अधिक रोकथाम हो जाये। 1980 स 1935 के एक ही चिकित्सा बीमा कम्पनी के सभी उम्रों के 7 लाख सदस्यों के आंकडों के विश्लेषण से यह भी ज्ञात हुआ कि ध्यान न करने वालों की तुलना में ध्यान करने वालों को डॉक्टरी परामर्श की औसत आवश्यकता आधी रही।

इस प्रकार के प्रयोगों एवं आकड़ों से प्रभावित होकर अमरीका के कई डॉक्टर कई बीमारियों के उपचार हेतु दवा के नुस्खे के साथ ध्यान का नुस्खा भी लिखने लगे हैं। ध्यान के नुस्खे के अन्तर्गत रोगी को ध्यान सिखाने वाले विशेषज्ञ के पास जाना होता है, जो ध्यान सिखाने की फीस लगभग 60 डालर प्रति घंटा लेता है। अमरीका की कई चिकित्सा बीमा कम्पनियाँ ध्यान पर होने वाले रोगी के इस खर्चे को दवा पर होने वाले खर्चे के रूप में मानती हैं व इसकी भरपाई करती हैं।

उपसंहार

अमरीका के डॉ. राबर्ट एन्थनी[25] ने इनकी पुस्तक 'टोटल सेल्फ कान्फिडेन्स' में ध्यान से तनाव व एलर्जी से मुक्ति, ड्रग एवं नशे की आदत से छुटकारा पाने में आसानी, एस्थेमा में राहत, ब्लडप्रेशर, कैंसर, कोलेस्टराल, हृदयरोग आदि में लाभ बताया है। इस तरह ध्यान के 24 भौतिक लाभ गिनाने के बाद यह बताया कि ये सब तो 'साइड इफेक्ट' यानी, अनाज के उत्पादन के साथ घास के उत्पादन की तरह हैं, मूल लाभ तो यह है कि आप ध्यान द्वारा आन्तरिक शक्ति के नजदीक आते हो। दार्शनिक जे. कृष्णमूर्ति ने ध्यान को 'सावधान किन्तु प्रयासरहित (Alert and Effortless) अवस्था की उपलब्धि कहा है। 'महर्षि' महेशयोगी मन के विश्राम पाने को भावातीत ध्यान कहते हुए ध्यान को आध्यात्मिक एवं भौतिक उपलब्धि का स्रोत बताते हैं। प्रेक्षाध्यान भी प्रेक्षक या ज्ञाता - दृष्टा के रूप में सक्रियता एवं निर्विचारता के रूप में मन की अचंचलता / विश्रामावस्था बताता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से तो श्रेष्ठ लाभ तभी होता है जब निकांक्षित अंग की प्रधानतापूर्वक साधक किसी लाभ की चाह न रखे व किसी हानि से नहीं डरे, वह श्रद्धान में अपनी

आत्मा को लाभ-हानि से परे माने। श्रेष्ठ धर्मध्यान वाली अवस्था तो वह है जहां **'पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजां'** (जहा प्राणियों के पाप क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं - वैसे ही जैसे कि सूर्य से अंधेरा क्षण भर मे नष्ट होता है)। आचार्य अमृतचन्द्र द्वारा वर्णित 'विकल्पजाल से रहित साक्षात अमृत पीने वाली अवस्था' स्वरूप में गुप्त होने से प्राप्त होती है - यही ध्यान की परम अवस्था है।[26] ज्ञानी की इस अवस्था को बहुत ही सुन्दर एव कम शब्दो में आचार्य अमृतचन्द्र यो भी कहते हैं कि यह विश्व के ऊपर तैरने वाली अवस्था है जिसमें न तो कर्म किया जा रहा है और न ही प्रमाद होता है -

विश्वस्योपरि ते तरंति सततं ज्ञानं भवंत: स्वयं
ये कुर्वन्ति न कर्म जातु न वशं यांति प्रमादस्य च।[27]

परिशिष्ट : जैनागम में वर्णित ध्यान के भेद-प्रभेद

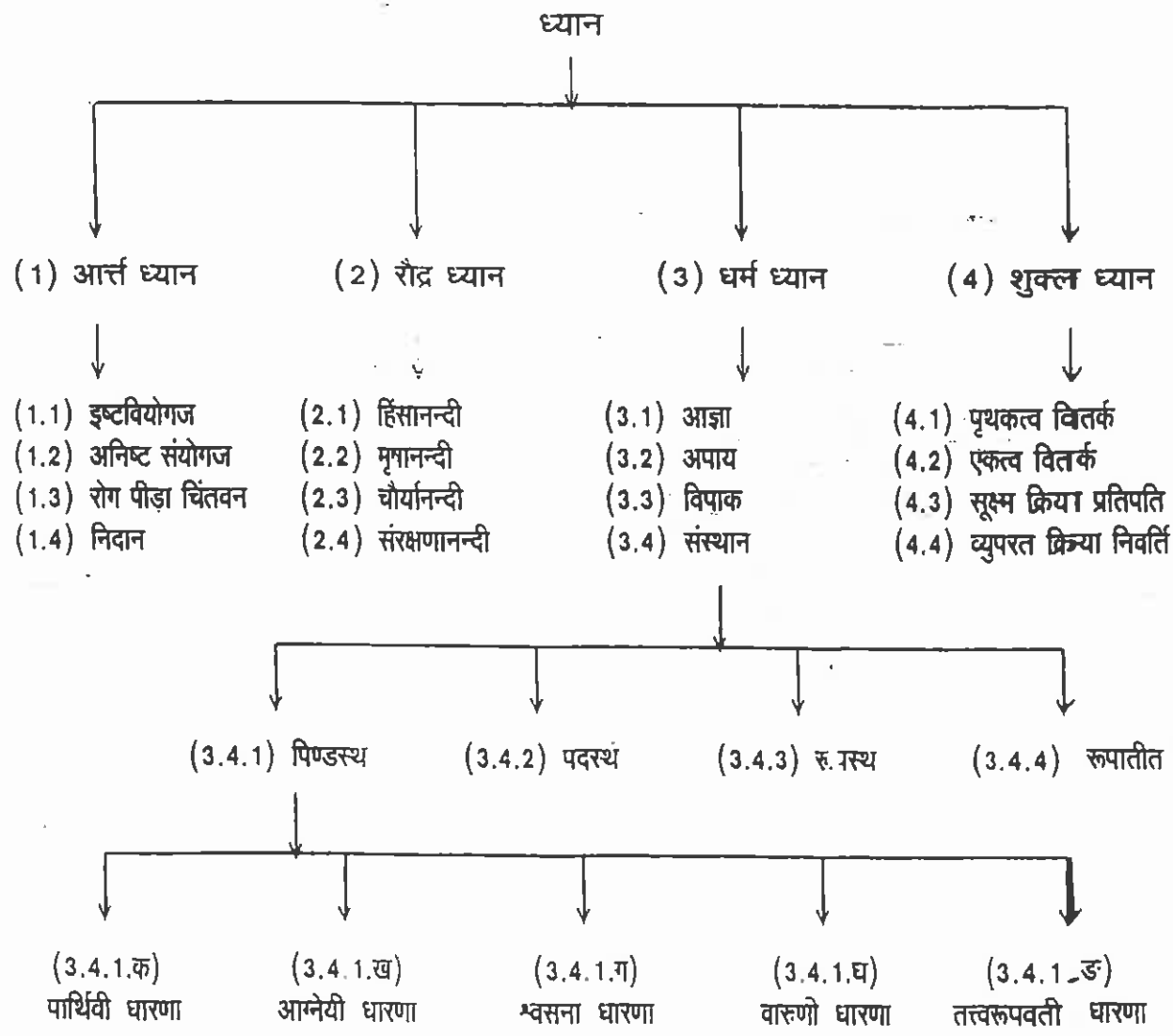

सन्दर्भ

1 आचार्य उमास्वामी, तत्त्वार्थसूत्र अध्याय 9

2 आचार्य शुभचन्द्र, ज्ञानार्णव, श्री परमश्रुत प्रभावक मंडल श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, आगास, गुजरात, 1995, सर्ग 25 से 42

3 (क) सन्दर्भ 1, सूत्र 9.37 - 9.44, (ख) सन्दर्भ 2, सर्ग 42

4 सन्दर्भ 2, श्लोक 28.25

5 सन्दर्भ 2, श्लोक 28.28

6 सन्दर्भ 2, श्लोक 25.39 एवं 26.36

7 सन्दर्भ 2, श्लोक 25.27 - 25.29, 25.31 - 25.33, 25.35, 25.36

8 सन्दर्भ 2, श्लोक 26.3

9 पारसमल अग्रवाल, 'आधुनिक विज्ञान, ध्यान एवं सामायिक', श्रमण, जुलाई - सितम्बर 1996, पृ.34 - 43

10 सन्दर्भ 2, सर्ग 38

11 सन्दर्भ 2, सर्ग 37

12 सन्दर्भ 2, सर्ग 39

13 सन्दर्भ 2, सर्ग 40

14 सन्दर्भ 2, सर्ग 33

15 सन्दर्भ 2, सर्ग 34

16 सन्दर्भ 2, सर्ग 35

17 सन्दर्भ 2, सर्ग 36

18 सन्दर्भ 2, श्लोक 41.12, 41.13, 41.15 - 41.17, 41.20, 41.25 - 41.27

19 Patricia Corrigton, 'Freedom in Meditation', Kendall Park, NJ : Pace Educational System, 1984

20 The American Medical Association : 'Family Medical Guide', Random House, New York, 1987

21 सन्दर्भ 19 की तरह

22 Herbert Benson and Marg Stark, 'Timeless Healing : The Power and Biology of Belief', (Fireside, Rockfeller Centre, 1230 Avenue of the Americas, New York, NY.10020, 1997)

23 Dean Ornish, 'Dr. Dean Ornish's Program for Reversing Heart Disease', (Ballantine Books, Randorn House, 1992)

24 Deepak Chopra, 'Perfect Health', (Harmony Books, N.Y., 1991)

25 Robert Anthony, 'Total Self Confidence : The Ultimate Secrets of Self Confidence', (Berkley Books, New York. 1984)

26 आचार्य अमृतचन्द्र, समयसार कलश, क्र. 69

27 आचार्य अमृतचन्द्र, समयसार कलश, क्र. 111

प्राप्त - 21.11.2000

ध्यान करने की विधि: अमरीकी चिकित्सकों का अभिमत

डॉक्टरों के संगठन 'अमरीकन मेडिकल एसोसिएशन'©The American Medical Association:Family Medical Guide(Random House, New York, 1987) ने 832 पृष्ठों की एक पुस्तक 'फैमिली मेडिकल गाइड' लिखी है जिसमें पृ. 20 पर विस्तार से यह बताया है कि जीवन को स्वस्थ बनाये रखने के लिए नियमित ध्यान करना चाहिए। पुस्तक के एक अंश का हिन्दी अनुवाद निम्नानुसार है -

''ध्यान करने की कई विधियाँ हैं किन्तु सभी का एकमात्र लक्ष्य है दिमाग को घबराहट एवं चिन्ताजनक विचारों से शून्य करके शान्त अवस्था प्राप्त करना।''

कई संस्थाएँ एवं समूह ध्यान करना सिखाते हैं किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि आप वहाँ जाकर ध्यान करना सीखें। अधिकांश व्यक्ति अपने आप ही ध्यान करना सीख सकते हैं। निम्नांकित सरल विधि को आप अपना सकते हैं :

1. एक शान्त कमरे में आराम से आँख बंद कर कुर्सी पर ऐसे बैठो कि पाँव जमीन पर रहे व कमर सीधी रहे।

2. कोई शब्द या मुहावरा ऐसा चुनो जिससे आपको भावनात्मक प्रेम या घृणा न हो। (जैस 'oak' या 'bring')। आप अपने होंठ हिलाए बिना मन ही मन इस शब्द का उच्चारण बार-बार दुहराओं। शब्द पर ही पूरा ध्यान दो, शब्द के अर्थ पर ध्यान नहीं देना है। इस प्रक्रिया को करते हुए यदि कोई विचार या दृश्य दिमाग में आए तो सक्रिय होकर उसे भगाने का प्रयास मत करो एवं उस दृश्य या विचार पर अपना ध्यान भी केन्द्रित करने का प्रयास मत करो। किन्तु बिना होठ हिलाए आप मन ही मन जो शब्द बोल रहें हो उसकी ध्वनि पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करो।

3. इस प्रक्रिया को प्रतिदिन दो बार 5–5 मिनट तक एक सप्ताह के लिए या जब तक कि दिमाग को अधिक समय के लिए विचार-शून्य करने के लिए प्रवीण न हो जाओ तब तक करो तत्पश्चात् ध्यान की अवधि धीरे-धीरे बढ़ाओ। शीघ्र ही देखोगे कि आप 20–20 मिनिट के लिए ध्यान करने में समर्थ हो गए हो।

कुछ व्यक्तियों को शब्द के आश्रय के बदले किसी चित्र या मोमबत्ती आदि वस्तु का आश्रय लेना सरल लगता है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस प्रकार के किसी भी शान्त ध्यान से दिमाग को विचारों एवं चिंताओं से रिक्त करना।''

प्रस्तोता : डॉ. पारसमल अग्रवाल

नमभूमि आवास(Wetlands)

नम भूमि आवास विश्व में सर्वत्र पाये जाते हैं। 2 फरवरी को प्रतिवर्ष विश्व नम भूमि दिवस मनाया जाता है। ये आवास भू-भाग और जलीय आवास के मध्य एक सेतु के समान है, इसीलिए इस प्रकार के आवास में विशिष्ट प्रकार की अत्यधिक विविध जीव-प्रजातियां पायी जाती है तथा पर्यावरणीय परिस्थितियां भी बहुत भिन्न होती है।

नम भूमि आवास को मृदा के प्रकार, जलविज्ञान एवं जीव प्रजाति के आधार पर परिभाषित किया जाता है। इस आवास की मृदा जल-संतृप्त होती है या वर्ष भर/कुछ अवधि तक जल निमग्न रहती है।

नभभूमि आवास को सर्वाधिक जैविक विविधता वाला पारिस्थितिक तंत्र माना जाता है। इसमें मैंग्रोव, जललिली, घास झाड़ियां, शैवाल आदि पौधे पाये जाते हैं। जन्तुओं में सूक्ष्म जलीय जीव, मछलियां, उभयचर, सरीसृप एवं जलीय पक्षी की प्रमुखता होती है।

नमभूमि आवास के प्रकार :-

(1) समुद्रीय/तटीय आवास-केरल का आस्था मुंडीय, पं.बंगाल का सुन्दरवन

(2) अन्तर्भूमि आवास-लवणीय, अलवणीय एवं नूनखरा जल की नदियां, झीलें, पोखर आदि।

(3) मानव निर्मित-पूर्वी कोलकाता के वेटलेण्ड्स, मछली पालन के टैंक

नमभूमि आवास के उपयोग :-

-बाढ़ एवं तूफान से सुरक्षा	- जल का शुद्धिकरण
-भूमिगत पदार्थों का संचयन	- मृदा अपरदन पर नियंत्रण
-पोषक पदार्थों का संचयन	- कृषि एवं खाद्य उत्पादन
-आर्थिक एवं सांस्कृतिक उपयोग	- मनोरंजन एवं स्वास्थ्य सुरक्षा

रामसर कन्वेंशन :- यह नमभूमि आवास के संरक्षण एवं स्वपोषित सुनियोजित उपयोग के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संधि है। इसका नामकरण ईरान के रामसर नगर से सम्बद्ध है जहां प्रथम नमभूमि कॉन्फ्रेन्स आयोजित हुई।

नमभूमि आवास के लुप्त होने के कारण-जलीय चक्र में परिवर्तन, अवसादन में वृद्धि, वायुमंडलीय प्रदूषकों का जमाव, भू उपयोग में बदलाव

भारत में नमभूमि आवास का संरक्षण-भारत में करीब 5.5 मिलियन हैक्टर नमभूमि क्षेत्र है। उसमें से 1.5 मि. भाग को सुरक्षा की आवश्यकता। भारत में अंतर्राष्ट्रीय महत्व के 93 नमभूमि क्षेत्र है, उनमें - वूलर(जम्मू-कश्मीर), रेणुका(हि.प्र.), चिल्का(उड़ीसा), सांभर(राज.) उल्लेखनीय है।

सौजन्य : डॉ. यशवन्त कोठारी चेरिटेबल पब्लिक ट्रस्ट, उदयपुर

Mamta Printers # 9928237557

ईर्या समिति

भगवान महावीर द्वारा प्रणीत जिन तेरह प्रकार के चारित्र का पालन करते हुए आचार्य तुलसी ने अपना एवं अन्य का जीवन सुगन्धित किया उनके बारे में जानना अपने आप में एक प्रेरणास्पद कार्य होगा । पांच महाव्रत (अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह), पांच समिति (ईर्या समिति, माषा समिति, एषणा समिति, आदान निक्षेपण समिति व उत्सर्ग समिति) एवं तीन गुप्ति(मन, वचन, काया) मिलाकर 13 प्रकार का चारित्र बनता है । (1) इनको एक–एक करके आधुनिक गृहस्थ के परिप्रेक्ष्य में समझकर एवं अपनाकर हमारे जीवन को सार्थक करने की आवश्यकता है । यहां हम ईर्या समिति यानि सावधानी पूर्वक विहार की बात करते हैं। ईर्या समिति के अंतर्गत मुमुक्ष सन्त विहार करते हुए चार हाथ जमीन देखते हुए आगे बढते हैं व भूमि पर स्थित जीवधारियों की रक्षा का ध्यान रखते हैं। आज चुनौतियां एवं खतरे विशेष ज्यादा हैं। अतः इसकी आवश्यकता और अधिक है।

हमारे आवागमन से आज कई मनुष्यों की जिंदगी दांव पर लगी हुई है। एक छोटी सी असावधानी अन्य की एवं स्वयं की मृत्यु या अपाहिजता का कारण बन सकती है। तेजगति से चलना, नियम विरूद्ध चलना, गलत तरीके से चलना, कार्नर कट करना, पात्रता न होने पर भी वाहन चलाना, पैदल चलते हुए पदयात्रीकी जिम्मेदारी न समझना आदि के बारे में गंभीरता पूर्वक चिन्तन, मनन एवं नियमों का पालन कई व्यक्तियों की जान बचा सकता है।

हमने पश्चिम जगत से वाहन तो लिये हैं किंतु वाहन से जुडा हुआ अनुशासन (ईर्या समिति का आधुनिक अंग) नहीं लिया है। अमरीका में कार ड्राइविंग लेने के पूर्व सरकार द्वारा निःशुल्क दी जाने वाली लगभग 50 पृष्ठों की एक पुस्तक पढकर 80 प्रतिशत अंकों के साथ परीक्षा पास करना अनिवार्य होता है। (मैंने स्वयं भी यह परीक्षा उत्तीर्ण की है) ईर्या समिति के पालनकर्ता संतों के शिष्य यदि लगभग 10 पृष्ठों की भी इस तरह की भारतीय परिप्रेक्ष्य में लिखित किसी पुस्तक का प्रचार–प्रसार करें एवं स्वयं पालना करें तो यह जीव–दया ही नहीं मानव दया के रूप में अहिंसा के मार्ग की एक बडी सेवा होगी ।

अमरीकी यातायात अनुशासन नियम संबंधित इस तरह की पुस्तक में एक बिन्दु मैंने यह भी पढा कि अपने वाहन की अधिकतम गति इतनी हो कि अगला वाहन आपसे 2 सैकण्ड से अधिक दूर हो। यानि, यदि अगला वाहन अचानक रूक जाए तो आपको एक्सीडेंट टालने के लिए 2 सेकण्ड का समय मिल जाए 2 सेकण्ड वाली बात मैंने जब पढी थी जब अचानक सैंकडों वर्षों से चली आ रही, चार हाथ जमीन देखने की ईर्या समिति की परंपरा की याद आई ।

4 किमी प्रति घंटा की रफ्तार से पैदल चलते हुए चार हाथ (6 फीट) दूरी तय करने में 1.6 सैकण्ड लगते हैं। यानि भारतीय मनीषियों ने भी अपने अनुभव या दिव्य ज्ञान से यह बताया था कि मनुष्य के मस्तिष्क को इतना समय पंखों के ब्रेक लगाने के लिये लग सकता है । कार चलाते हुए कार के ब्रेक लगने के समय को भी जोडें तो 2 सैकण्ड दूरी की बात एंव चार हाथ जमीन देखकर चलने की बात में समानता दिखाई देती है।

सारांश यह है कि हर वाहन चालक एवं पैदल चलने वाले द्वारा यातायात–अनुशासन एवं नियमों का पालन करने से तेरह प्रकार के चारित्र में से ईर्या समिति चारित्र की अनुमोदना का पुण्य लाभ होगा ही, साथ में इससे स्वयं की एवं मानव जाति की भी जीवन रक्षा होगी । इन्हीं शब्दों के साथ यहां हम भगवान महावीर परंपरा के पंच परमेष्ठी को नमन करते हैं तथा जीओ और जीने दो को उद्घोष करते हुए विराम लेते हैं।

–प्रो. पी.एम. अग्रवाल

संदर्भ : जैन विद्या भाग–1

गतिविधियां

आचार्य भिक्षु आलोक संस्थान केलवा में ज्ञान केन्द्र का विकास एक प्रमुख दिशा है। इसके शुभारम्भ के लिए डॉ. आर.एल. जैन, पूर्व अधिष्ठाता, लॉ कॉलेज एवं पूर्व अध्यक्ष जैन श्वेताम्बर तेरापंथ सभा ने निम्नांकित तीन पुस्तकें भेंट करने का निश्चय किया है। पुस्तकें उदयपुर में उपलब्ध नहीं है। उनको बाहर से मंगाने का प्रयास किया जा रहा है–

1. समण सुतं
2. तथ्वार्थ सूत्र
3. समय सार–कुन्द कुन्दाचार्य

अपील

'भिक्षु आलोक संस्थान' केलवा पवित्र भावना से विकसित संस्था है जिसकी तेरापंथ की जन्म भूमि में अत्यन्त अपेक्षा है। एक विराट संस्था की कल्पना और संकल्प है। संस्था की वर्तमान में दो दिशाएं निर्धारित की है – (1) विशाल ज्ञान केन्द्र की स्थापना (2) ज्ञानोदय– विद्यार्थियों के ज्ञान स्तर एवं आत्मविश्वास को बढाना मुख्य ध्येय है।

इस पवित्र कार्य में महानुभावों का सहयोग सादर आमंत्रित हैं–

(1) ग्यारह हजार रूपये देकर सदस्य बन कर।
(2) महत्वपूर्ण साहित्य भेंट कर।
(3) चन्दा दे कर।
(4) संस्था की आवश्यकताओं की पूर्ति कर।
(5) शुभकामनाएं और प्रेरणा संदेश देकर।

– डॉ. यशवन्त कोठारी

'श्रद्धा'

के बारे में आपके सुझाव सादर आमंत्रित हैं।

आचार्य भिक्षु आलोक संस्थान, केलवा

श्री बाबूलाल कोठारी
कार्यकारी अध्यक्ष
9414174224

श्री देवीलाल कोठारी
सचिव
9413025958

श्री अरविन्द कोठारी
कोषाध्यक्ष
9414659731

सम्पादक – श्री प्रकाश तातेड(9351552651)

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

वर्ष - 15, अंक - 3, 2003, 33 - 41 से पुनर्मुद्रित

आत्मज्ञान : आधुनिक मनोविज्ञान एवं हमारे जीवन के संदर्भ में

■ पारसमल अग्रवाल *

सारांश

आलेख में आत्मा के वास्तविक स्वरूप का अध्यात्म एवं आधुनिक मनोवैज्ञानिकों/चिन्तकों की दृष्टि से परिचय देने के उपरान्त भागदौड़ पूर्ण वर्तमान जीवन शैली में वास्तविक शान्ति के उपाय वर्णित किये गये हैं। — सम्पादक

पश्चिम जगत में भौतिकता से लिप्त मानवों को सुख - शान्ति का मार्ग दिखाने हेतु अविनाशी आत्मा के अस्तित्व को कई उच्च कोटि के मनोवैज्ञानिक सरल भाषा में पुस्तकों, कैसेटों एवं व्याख्यानों द्वारा समझा रहे हैं। ऐसे मनोवैज्ञानिकों में वेन डायर,[1] दीपक चोपड़ा,[2] केरोलिन मीस,[3] लुई हे,[4] गेरी झुकाव,[5] रिचर्ड कार्लसन,[6] आदि के नाम प्रमुख हैं। पश्चिम के पाठकों को ऐसे वैज्ञानिक क्या परोस रहे हैं इसकी एक झलक वेनडायर[7] की निम्नांकित पंक्तियों से मिल सकती हैं -

"Make an attempt to describe yourself without using any labels. Write a few paragraphs in which you do not mention your age, sex, position, title, accomplishments, possessions, experiences, heritage or geographic data. Simply write a statement about who you are, independent of all appearances".

उक्त पंक्तियों का भावार्थ यह है कि अपने परिचय के बारे में कुछ पैराग्राफ ऐसे लिखो जिसमें आपकी उम्र, लिंग, पदवी, उपाधि, उपलब्धियां, संपत्ति, संग्रह, अनुभव, परिवार, नगर आदि का उल्लेख न हो। केवल अपने बारे में ऐसा परिचय लिखो जो इन बाहरी रूपों पर आधारित न हो।

ऐसा लिखने के पीछे वेन डायर का भाव यह स्पष्ट करने का है कि समस्त बाहरी रूपों से परे भी आप हो। 'मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ' वाली धुन तक वे अपने पाठकों को ले जाना चाहते हैं।

ऐसी पुस्तकों के कई संस्करण निकलना इस बात का प्रमाण है कि जनता को इनमें लाभ मिल रहा है। पाठकों को लाभ कैसा मिल रहा है इसकी एक झलक एक पाठक के निम्नांकित शब्दों से स्पष्ट होती है।[8]

''प्रिय डॉ. डायर, मेरे पुत्र की हत्या लुटेरों द्वारा हो गई थी व उससे भारी आघात मुझे पहुँचा था। आपकी पुस्तकों व कैसेटों से जब मुझे यह समझ में आया कि हम शरीर के अन्दर स्थित आत्मा हैं, न कि प्राण सहित शरीर, तब मुझे सांत्वना मिली। मैं अपने पुत्र की मृत्यु को तो नहीं भूल पाई हूँ किन्तु यह समझ में आया है कि मृत्यु कहानी का अन्त नहीं है। आपसे प्राप्त शिक्षा को मैं अपने शब्दों में निम्नांकित कविता के रूप में लिख रही हूं जिसे पढ़कर आपको अच्छा लगेगा -

* रसायनशास्त्र विभाग, ओक्लोहोमा स्टेट यूनिवर्सिटी, स्टिलवाटर ओ.के. 74078 यू.एस.ए.

आप "मुझे" देख नहीं सकते,
आप तो केवल शरीर देखते हो,
जिसे "मैं" समझ बैठते हो,
शरीर जो दिखता है वह है नाशवान,
किन्तु "मैं" तो हूं अमर।

-Sincerely, MaryLou Van Atta (Newark, ohio)

एक अन्य अमरीकी पाठिका इस पुस्तक के पृ. 119 पर अपना अनुभव वर्णित करती है कि किस तरह शरीर से आसक्ति भाव त्याग कर परमात्म तत्व में अपनत्व का अभ्यास करने से उसका कैंसर दूर हो गया। डॉक्टरों ने तो उसे कह दिया था कि अब उसकी मृत्यु कुछ ही माह दूर है किन्तु न केवल उसका कैंसर दूर हुआ अपितु 9 (नौ) वर्षों में एक बार भी उसे डॉक्टर या अस्पताल की आवश्यकता नहीं हुई। (नोट : इस टिप्पणी का उद्देश्य तो छिपी हुई आध्यात्मिक शक्ति को उजागर करने का है। चिकित्सा विज्ञान से हजारों वर्षों में अब तक जो रोगियों को प्रत्यक्ष लाभ मिल रहा है उसका महत्व नकारा नहीं जा सकता है।)

आध्यात्मिक मनोविज्ञान की आवश्यकता

एक जमाना था जब मनोवैज्ञानिकों के सामने ज्यादा समस्याएं पारिवारिक झगड़ों की या हीन भावना से ग्रस्त निराशा की आती थी। आत्मा का सहारा लिए बिना ऐसी समस्याओं को सुलझाने के लिए भूतकाल के व बचपन के अनुभवों को सुनकर रोगियों को सलाह मिलती थी। आज जीवन में संघर्ष बढ़ गया है व व्यक्ति अकेलापन कठिनाई के समय अनुभव करता है। जिसके पुत्र की हत्या हो गई हो उसको उसके बचपन की कोई भी घटना मन की अशान्ति को हल करने का मार्ग नहीं दिखा सकती है। उसके लिए तो आत्मा का आश्रय ही परम औषधि है जो उक्त उदाहरण में असर करती हुई दिखाई देती है।

इस तरह की आवश्यकता के आधार पर ही गेरी झुकाव जैसे मनोवैज्ञानिक लिखते हैं कि अब "आध्यात्मिक मनोविज्ञान" को विकसित करने की आवश्यकता है जिसमें आत्मा, पुनर्जन्म एवं कर्म सिद्धांत हाशिये में न होकर केन्द्र में हो। उनके शब्दों में[9] -

"Re-incarnation and the role of karma in the development of the soul will be central parts of spiritual psychology".

गेरी झुकाव के अनुसार इस तरह के आध्यात्मिक मनोविज्ञान द्वारा इस स्तर की समझ विकसित हो सकती है कि क्रोध, डर, ईर्ष्या आदि भावनाओं को जिनसे व्यक्ति को हानि पहुँचती है उनको भी इस तरह से समझने की आवश्यकता है कि इनके उदय के समय व्यक्ति और नये ऋणात्मक कर्म नहीं बांधे। गेरी झुकाव[10] के शब्दों में -

"The fears, angers and jealousies that deform the personality can not be understood apart from karmic circumstances that they serve. When you understand, and truly understand, that the experiences of your life are necessary to the balancing of the energy of your soul, you are free to not react to them personally, to not create more negative karma for your soul."

गेरी झुकाव का मन्तव्य उक्त कथन में मानवीय कमजोरियों के प्रति भी समता भाव रखने का है। वस्तु व्यवस्था पर यानी कर्म सिद्धांत पर आस्था होना आवश्यक है।

इस आस्था के अन्तर्गत यह समझ होती है कि सृष्टि में अकस्मात कुछ भी नहीं होता है, सभी कुछ नियमों से होता है व आत्मा अनन्त शक्तिमान, अविनाशी व परिपूर्ण है। जब तक यह समग्र दृष्टि नहीं होती है तब तक व्यक्ति अपने दुर्भाग्य के लिए मौसम, सरकार, परिवार, पड़ोसी, कलियुग आदि को जिम्मेदार ठहराता है। अध्यात्म की थोड़ी समझ आने के बाद व्यक्ति यह जान लेता है कि उसके जीवन में जो कुछ भी घटित हो रहा है उसके लिए उसके द्वारा पूर्वकृत कर्म ही जिम्मेदार हैं। विशिष्ट ज्ञानी इस समझ को भी अपूर्ण समझ मानते है क्योंकि दुर्भाग्य के लिए स्वयं को दोषी मानना भी तो कष्ट का कारण बनता है, यह समझ स्वयं को धिक्कारने की ओर यदि ले जाये तो फिर इससे लाभ कम होता है व हानि अधिक होती है। जो अधूरी समझ के कारण इस तरह से स्वयं को धिक्कारने की स्थिति में हो उसे यह समझना बाकी है कि तुम तो आत्मा हो जिसे दुर्भाग्य छूता नहीं है। भारतीय दर्शन में व जैनाचार्यों ने इस तथ्य को विस्तृत विज्ञान के रूप में निरूपित किया है जिसे भेद विज्ञान या वीतराग विज्ञान कहा जाता है। भेद विज्ञान को इतना अधिक महत्व दिया है कि इसे मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी या धर्म का प्रारंभ भी कहा है। भेद विज्ञान की अवस्था को आत्मज्ञान की उपलब्धि या सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान की अवस्था भी कहा जाता है। समयसार कलश में कहा[11] है कि जितनी भी आत्माएं परमात्मा बनी हैं वे सभी भेदविज्ञान के द्वारा बनी हैं व जितने भी जीव संसार में बंधे हैं वे भेदविज्ञान के अभाव द्वारा ही बंधे हुए हैं।

भेदविज्ञान के अन्तर्गत ज्ञानी यह समझता है कि मैं शरीर नहीं हूँ, वाणी नहीं हूँ, मन नहीं हूँ, इनका कारण नहीं हूँ, इनका कर्त्ता नहीं हूँ... आचार्य अमृतचन्द्र समयसार कलश में बताते हैं[12] -

नाहं देहो न मनो न चैव वाणी न कारणं तेषां।
कर्त्ता न न कारयिता अनुमन्ता नैव कर्तृणाम्॥

इसी तरह आचार्य कुन्दकुन्द समयसार[13] में लिखते हैं कि -

कर ग्रहण प्रज्ञा से नियत, ज्ञाता है सो ही मैं ही हूं।
अवशेष जो सब भाव हैं, मेरे से पर ही जानना॥

इसी ग्रंथ में आचार्य समझाते हैं कि -

उपयोग में उपयोग, को उपयोग नहीं क्रोधादि में।
है क्रोध क्रोध विषैं हि निश्चय, क्रोध नहिं उपयोग में॥[14]

इन गाथाओं का संक्षिप्त भावार्थ यह है कि क्रोध, अहंकार, डर आदि विकारी भाव ज्ञान-दर्शन (उपयोग) स्वभाव वाले मुझ आत्मा से भिन्न हैं। इसी तारतम्य में आचार्य अमृतचन्द्र समयसार कलश[15] में एक सिद्धान्त निरूपित करते हुए शिक्षा देते हैं कि -

सिद्धान्तोऽयमुदात्त चित्त चरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यतां
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योतिः सदैवास्म्यहं।
एते ये तु समुल्लसंति विविधा भावाः पृथग्लक्षणा
स्तेहं नास्मि यतोऽत्र ते मम पर द्रव्यं समग्रा अपि॥

इस श्लोक का भावार्थ यह है कि इस सिद्धान्त का सेवन करना चाहिए कि "मैं तो सदा शुद्ध चैतन्यमय एक परमज्योति ही हूं, जो यह भिन्न लक्षणवाले विविध प्रकार के भाव प्रगट होते हैं वे मैं नहीं हूं, क्योंकि वे सभी मेरे लिए पर हैं।"

तात्पर्य यह है कि यह समझ होना चाहिए कि जो अविनाशी आत्मा है वह मैं हूँ। क्रोध, विकार आदि परिस्थिति के अनुसार यानी कर्मोदय के अनुसार पैदा होते हैं व नष्ट होते रहते हैं किन्तु मेरा कभी नाश नहीं होता है अतः क्रोध, विकार आदि भाव में ममता या ममत्व या अपनापन नहीं रखना चाहिए।

दूसरे शब्दों में, जैसे शरीर आत्मा के वस्त्र की तरह है व बदलता रहता है, उसी तरह क्रोध, अहंकार, छलकपट, लालच, घृणा, डर आदि विकारी भाव भी वस्त्र की तरह बदलते रहते हैं, अन्तर यह है कि शरीर यदि बाहर दिखने वाला वस्त्र है तो ये भाव अंतरंग वस्त्र (Undergarments) हैं। शास्त्रीय भाषा मे इन्हें अंतरंग परिग्रह कहा जाता है।

प्रश्न : क्रोध, डर, लालच, ईर्ष्या आदि गंदे संस्कारों या विचारों को अपना नहीं मानेंगे तो उन्हें हटाने के प्रयास हमारे से नहीं होंगे, हम आलसी हो सकते हैं। अतः सत्यमार्ग या कल्याणकारी मार्ग या शान्ति व आनन्द का मार्ग क्या होना चाहिए?

उत्तर : वास्तव में यह एक उलझन है। यदि हम शरीर एवं मन की क्रियाओं को अपना समझते हैं तो जब भी इनसे गलती होती है तब हमें धिक्कारपन होता है एवं बुरा लगता है व इस प्रक्रिया में हम दुःखी होकर नवीन पापों का बंध कर लेते हैं। किन्तु यदि हम इन्हें अपना नहीं समझते हैं तो फिर हम बेपरवाह हो सकते हैं, या आलसी हो सकते हैं, यह सोचकर कि मैं तो अविनाशी आत्मा हूं व मुझे किससे भी लाभ-हानि नहीं है तो फिर डर किस बात का, ऐसी स्थिति में गलत राह पर भी लग सकते हैं। इस प्रकार यह उलझन बनी रहती है कि दोनों में से किसे चुने। इसका उत्तर यह है कि यथायोग्य समझो। इस 'यथायोग्य' की व्यवस्था हेतु जैन दर्शन में अनेकान्त की व्यवस्था है। कल्याणकारी मार्ग को अनेकान्त रूप से आचार्यों ने शास्त्रों में विस्तार से समझाया है जिसे हम सरल भाषा में व अत्यन्त संक्षिप्त शब्दों में एक त्रिभुज के तीन बिन्दुओं के (देखिए चित्र क्रं. 1) द्वारा समझ सकते हैं। इस त्रिभुज को समझने के पहले नैतिकता के सामान्य शिष्टाचार की समझ होना चाहिए। मेरा जीवन दूसरों के मार्ग में कांटे न बिछाए - यह समझ तो होना ही होना चाहिए।

जैसे कोई विज्ञान सीखना चाहे तो न केवल विज्ञान सीखना होता है अपितु प्रयोगशाला के अनुशासन को भी समझना होता है, साथ में कार्य करने वाले व्यक्तियों में मेलजोल के तरीके भी सीखने होते हैं, व शरीर के भोजन व विश्राम का भी ध्यान रखना होता है। उसी तरह सुख के इस मार्ग को समझने एवं अभ्यास करने हेतु एक तरफ अविनाशी आत्मा में अपनत्व स्थापित करना होता है तो दूसरी तरफ शरीर, मन एवं वाणी की आवश्यकताएं व मनोकामनाएं किस तरह अन्य प्राणियों एवं स्वयं के विकास में निमित्त बन सकती हैं व किस तरह बाधा बन सकती है इसका ज्ञान किया जाता है व उसके अनुसार आचरण होता है। साथ ही वस्तु-व्यवस्था की समझ भी आवश्यक होती है। इन तीनों घटकों को त्रिभुज के तीन बिन्दुओं के रूप में चित्र क्रं. 1 में दर्शाया गया है। तीनों बिन्दुओं की विशेषताएं निम्नानुसार हैं :

त्रिभुज का एक बिन्दु 'अ' :

इसके अन्तर्गत यह मान्यता एवं समझ पक्की होती है कि मैं पूर्ण सुख व शक्ति का भंडार अविनाशी आत्मा हूं, मेरी आत्मा सदैव पूर्ण है यानी इसको और अधिक अच्छा या पूर्ण करने के लिए बाहर से कुछ भी नहीं चाहिए। आत्मा में परिस्थिति के अनुसार

पैदा होने वाले क्रोध, डर, अहंकार आदि विकारी भाव समुद्र में हवा के द्वारा उत्पन्न लहरों की तरह अस्थायी हैं व ये सब भाव मेरी आत्मा का बिगाड़-सुधार नहीं कर सकते हैं। मन में कभी शान्ति अनुभव होती है व कभी अशान्ति अनुभव होती है, यह मन का बिगाड़-सुधार आत्मा से भिन्न है यानी मुझसे भिन्न है, यह बिगाड़-सुधार आत्मा के बाहर का बाहर रहता है।

त्रिभुज का एक बिन्दु 'स' :

यद्यपि आत्मा पूर्ण है यानी मैं पूर्ण हूँ यानी मेरा बिगाड़-सुधार नहीं होता है किन्तु शरीर को सामान्यतया भूख लगती है, मन में सामान्यतया मान-अपमान, यश-अपयश एवं सुरक्षा के भाव आते रहते हैं। मन में शान्ति की चाह होती है। शरीर व मन की ये आवश्यकताएं एवं कामनाएं किस तरह संयमित या अनुशासित हों कि स्वयं के तथा अन्य के शरीर व मन की पीड़ा कम से कम हो। परोपकार, सत्संग, अध्ययन, उचित भोजन, उचित वाणी, ध्यान, यथायोग्य मेल-मिलाप की कला इस बिन्दु के अन्तर्गत व्यक्ति सीखता है। सीखते-सीखते यह भी समझ में आने लगता है कि मन की शान्ति का आधार चाह कम करके आत्मदृष्टि करने में है। मन की शान्ति की आधार परिस्थिति से डरने या घबराने में नहीं है। चाह या डर कम करने में सुस्ती भी उचित नहीं व उतावलापन भी उचित नहीं। जैसे शारीरिक व्यायाम करने वाले जानते हैं कि किस तरह सुस्ती हानिकारक है व किस तरह 100 ग्राम का वजन उठाने से मांसपेशियों का व्यायाम नहीं हो जाता है किन्तु 100 किलो का वजन पहले ही दिन उठा लेने में हानि हो जाती है उसी तरह यहां भी यही प्रक्रिया लागू होती है।

त्रिभुज का एक बिन्दु 'व' :

मन में शान्ति रहना, परिवार में सभी का निरोग रहना, व्यापार में लाभ होना शरीर व मन को सुखद लगता है। पुण्यात्मा जीव के इस तरह की मनोकामनाएं सामान्यतया पूर्ण होती हैं। किन्तु इस तथ्य को भी नहीं भूलना है कि प्रत्येक मनोकामना का पूर्ण होना आवश्यक नहीं है। ज्ञानी के यह समझ विकसित हो जाती है कि कामनाओं की पूर्ति न होने की स्थिति में मन में या शरीर में चाहे असुविधा या अप्रसन्नता या आंसू हों, या पूर्ति की स्थिति में प्रसन्नता हो, मैं तो आत्मा हूँ, मैं तो इन आंसुओं एवं प्रसन्नता-अप्रसन्नता का ज्ञाता-दृष्टा हूं, इनसे मुझे कोई लाभ-हानि नहीं, इनसे मेरा कोई बिगाड़-सुधार नहीं, साथ ही यह भी समझ होती है कि सृष्टि में अकस्मात कुछ भी नहीं होता है। सब कुछ नियमों के अनुसार हो रहा है। कर्म-व्यवस्था किसी का पक्षपात नहीं करती है। किन्तु यह कर्म-व्यवस्था इतनी उत्तम है कि जो प्राणी सत्य समझ को अपनाते हैं उनकी संयमित कामनाएं सामान्यतया पूर्ण होती हैं। कभी ऐसा लग सकता है कि जीवन की गाड़ी अच्छी नहीं चल रही है किन्तु ऐसी स्थिति भी प्रकृति की कर्म व्यवस्था के अन्तर्गत ज्ञानी के लिए शुभ सिद्ध होती है।

त्रिभुज के तीनों बिन्दुओं का महत्व है। बिन्दु 'अ' में वर्णित लाभ-हानि से परे आत्मा की समझ न हो तो बिन्दु 'ब' में वर्णित हर्ष-आंसू में समभाव नहीं आ सकता है। बिन्दु 'ब' में वर्णित वस्तु व्यवस्था एवं कर्म सिद्धांत की समझ न हो तो बिन्दु 'स' में वर्णित शरीर की एवं मन की क्रियाएं संयमित नहीं हो जाती है। बिन्दु 'स' की समझ के आधार पर मन व शरीर स्वच्छ न हों तो बिन्दु 'अ' की आत्मा की गहरी समझ ठहर नहीं पाती है।

ज्ञानी को भौतिक लाभ

ज्ञानी को संसारिक उपलब्धियों के सन्दर्भ में आचार्यों के स्थान-स्थान पर ऐसे कथन हैं कि ऐसे भेदज्ञानी के पुण्योदय से कठिन कार्य भी सुलभ हो जाते हैं। धन, संपत्ति, विजय, वैभव, यश, महाराजा, महेन्द्र जैसी ऊंची पदवियाँ भी सुलभ होती हैं।[16] प्रथमानुयोग के सभी ग्रंथ इस तथ्य के साक्षी हैं। आधुनिक विद्वानों में दीपक चोपड़ा यह दावा करते हैं कि जिसे फल प्राप्ति की आसक्ति नहीं है व जो अपने को एवं अन्य प्राणियों को बिगाड़-सुधार रहित अविनाशी आत्मा की तरह देखते हैं उनकी मनोकामनाओं की पूर्ति बहुत सरलता से होती रहती है - इस तथ्य को विस्तार से उन्होंने The seven spiritual Laws of Success. पुस्तक में समझाया है।[17]

आत्मज्ञानी को आत्मिक लाभ के साथ-साथ भौतिक लाभ क्यों होते हैं? पुण्य क्यों बंधता है? इस तरह के मौलिक प्रश्नों के उत्तर देना उसी तरह कठिन है कि गुरुत्वाकर्षण क्यों होता है या धन विद्युत एवं ऋण विद्युत के बीच आकर्षण क्यों होता है। फिर भी हम उदाहरणों से कुछ मर्म निकाल सकते हैं। जैसे कोई व्यक्ति एक पैसा भी किसी का चुराने की भावना न रखे तो उसको कोई अपार धन संभालने के लिए दे सकता है। आत्मज्ञानी अपनी आत्मा के अतिरिक्त एक कण को भी अपना नहीं मानता है तो प्रकृति की वस्तु व्यवस्था से ऐसी स्थितियां बनती हैं कि विपुल समृद्धियां उसके माध्यम से बहती हैं। जिसको अपना सर्वस्व लूटते नजर आता है वे दूसरों का सर्वस्व लूटना चाहते हैं या येन-केन-प्रकारेण अपनी रक्षा करना चाहते हैं। इसके विपरीत आत्मज्ञानी को कर्म-सिद्धांत में विश्वास होता है व सांसारिक संयोगों में लाभ-हानि नजर नहीं आने के कारण पाप में प्रवृत्ति कम होती रहती है। इससे आत्मज्ञानी की ऊर्जा का क्षय कम होता है जिससे अच्छे विचार होते हैं, अच्छे निर्णय होते हैं, उत्तम स्वास्थ्य होता है, उत्तम मित्र व रिश्ते बनते हैं। निराशा न होने के कारण ज्ञानी को आलस्य भी कम होते हैं। ये सभी घटक एवं पुण्योदय भौतिक उपलब्धियों को आकृष्ट करते हैं।

एक अनमोल रत्न

इस लेख का समापन आचार्य कुन्दकुन्द के एक अनमोल रत्न द्वारा करना चाहता हूं। यह सूत्र वाक्य न केवल रोगियों के लिए उपयोगी है अपितु आज की भागदौड़ में शामिल सांसारिक प्राणियों की किसी भी तरह की मन की अशांति को दूर करने के लिए परम अमृत है। जहां अन्य नुस्खे असफल हो जाते हैं वहां भी यह कार्य करता है। एक शिष्य ने आचार्य से प्रश्न किया कि अशांति कैसे दूर हो तो उसके उत्तर में आचार्य कुंदकुंद ने समयसार में यह कहा -

मैं एक शुद्ध ममत्वहीन रू ज्ञान दर्शन पूर्ण हूं।
इसमें रहूं स्थित लीन इसमें, शीघ्र ये सब क्षय करूं॥[18]

अर्थात् अपने को ज्ञान दर्शन से पूर्ण अरूपी शुद्ध आत्मा समझकर उसमें लीन रहने से यानी अशांति के भी ज्ञाता-दृष्टा बनते हुए रहने से अशांति नष्ट हो जाती है। यह नुस्खा कार्य करता है इसका समर्थन आधुनिक मनोवैज्ञानिक भी करते हैं।[19]

परिशिष्ट 1 -

हम व्यापारी हैं, हम पुरूष/स्त्री हैं, हम खरीददार हैं, हम जैन हैं, हम मनुष्य हैं, हम आत्मा हैं.....। हमारे इतने परिचय हो गए हैं कि हम स्वयं उलझ गये हैं। हम हमारा असली परिचय भूल गए हैं। इस लेख में हमारे असली परिचय की महत्ता एवं

उपयोगिता वर्णित हुई है। पूर्णता की दृष्टि से हमारे समस्त परिचयों को विहंगम दृष्टि से समझने हेतु संलग्न चार्ट में आवश्यक जानकारी संग्रहीत की गई है। कृपया संलग्न चार्ट देखिए।

सन्दर्भ / टिप्पणी –

1. Wayne W. Dyer, 'There's a spiritual solution to Every Problem', (Harpercollins, New York, 2001)
2. Deepak Chopra, 'How to know God', (Harmony Books, New York, 2000)
3. Caroline Myss, 'Anatomy of the Spirit', (Three Rivers Press, New York, 1996)
4. Louise L. Hay, 'You can Heal your Life', (Hay-House, Santa Monica, USA)
5. Gary Zukav, 'The Seat of the Soul', (Fireside, New York, 1989)
6. Richard Carlson, 'Don't sweat the samll stuff', (Hyperion, New York, 1997)
7. Wayne W. Dyer, 'Your Sacred self : making the Decision to be Free', (Harper Paperbacks, New York, 1995) Page 269
8. यह संक्षिप्त भावानुवाद है। मूलपत्र हेतु देखें सन्दर्भ क्रं. 1, पृ. 26
9. सन्दर्भ क्रं. 5, पृ. 197
10. वही, पृ. 195
11. आचार्य अमृतचन्द्र, समयसार कलश क्र. 131
    ''भेदविज्ञानत: सिद्धा: सिद्धा ये किल केचन।
    अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन॥''
12. आचार्य अमृतचन्द्र, आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा रचित प्रवचनसार गाथा क्र. 160 का संस्कृत अनुवाद
13. समयसार, गाथा 299
14. वही, गाथा 181
15. समयसार कलश, क्र. 185
16. आचार्य समन्तभद्र, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, श्लोक क्र. 1 - 36 से 1 - 40
17. Deepak Chopra, 'The seven spiritual Laws of success, A practical Guide to the fulfillment of your Dreams' (Amber - Allen, San Rafael, CA, USA; 1994)
18. समयसार, गाथा 73.
19. सन्दर्भ क्रं. 7 के पृ. 136 पर निम्नांकित पंक्तियां दृष्टव्य हैं :

    First you want to watch your thoughts. Then you want to watch yourself watching your thoughts. Here is the door to the inner space where, free from all thoughts, you experience the bliss and the freedom that transport you directly to your higher self.

    इसी क्रम में वेन डायर लिखते हैं -

    The simple exercise of watching your mind manufacturing its thoughts will eventually cause unwanted, unnecessary, erroneous thoughts to dissolve.

प्राप्त – 20.12.02

चित्र क्रमांक 1 – सामान्य आत्मज्ञानी की समझ

मैं अनन्त सुख व शक्ति का भण्डार, अविनाशी आत्मा हूँ। मेरी आत्मा सदैव पूर्ण है। इसमें न तो कुछ मिलाना सम्भव है और नही कुछ घटाना। सभी आत्माएँ बिगाड़ – सुधार से परे हैं।

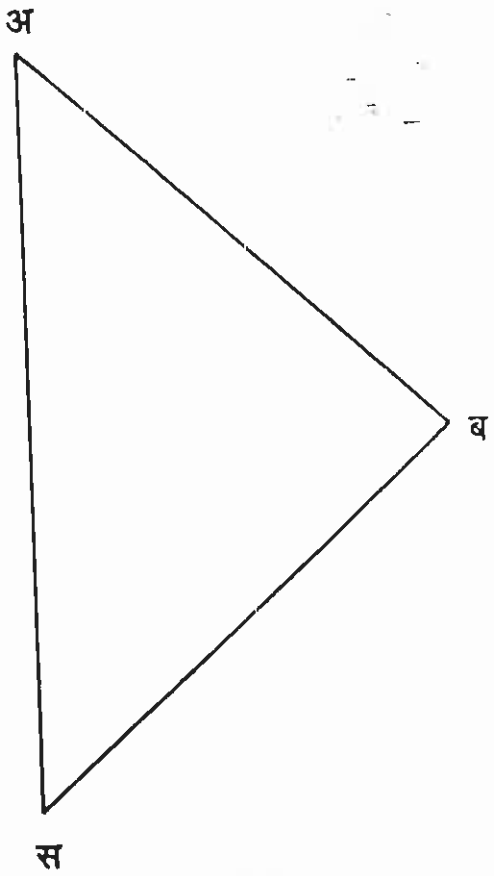

सृष्टि में सभी कुछ नियमों के अनुसार ही होता है। कर्म – सिद्धान्त किसी का पक्षपात नहीं करता है। किन्तु जो प्राणी सत्य समझ को अपनाते हैं उनकी मनोकामना, सामान्यतया पूर्ण होती हैं। प्रत्येक चाह का पूर्ण होना आवश्यक नहीं है। चाह पूर्ति की स्थिति में कभी मन में प्रसन्नता या होठों पर मुस्कान हो, व चाह – पूर्ति न होने की स्थिति में कभी मन में अप्रसन्नता या आँखों में आँसू आ सकते हैं किन्तु हर स्थिति में मैं तो आत्मा हूँ व इस तरह की प्रसन्नता या अप्रसन्नता का मात्र ज्ञाता – दृष्टा हूँ।

मन एव शरीर की आवश्यकता, व कामनाएँ अनुशासित व संयमित रहते हुए पूर्ण होती रहें। मन की शान्ति का उपाय चाह कम करके आत्मदृष्टि करने में है। चाह कम करने में सुस्ती भी उचित नहीं, उतावलापन भी उचित नहीं। परोपकार, सत्संग, अध्ययन, यथायोग्य मेल – मिलाप, उचित भोजन, उचित वाणी, ध्यान आदि इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण हैं।

समयसार - परिचय

दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थ एवं समयसार

डॉ पारसमल अग्रवाल
Dr. Paras Mal Agrawal
Visiting Professor & Research Prof. (Retd.)
Oklahoma State University
Stillwater OK 74078 USA, and
Professor of Physics (Retd.)
Vikram University, Ujjain MP India

1

दिगम्बर परम्परा में चार अनुयोग

(1) प्रथमानुयोग – 63 शलाका पुरूषों एवं महापुरूषों के चरित्र का वर्णन
पद्मपुराण (राम–चरित्र), पांडव पुराण, हरिवंश पुराण, तीर्थंकरों के चरित्र सम्बन्धि पुराण , आदि

(2) करणानुयोग – लोक का वर्णन, कर्म–सिद्धान्त का वर्णन, जीव वैविधता का वर्णन
गोम्मटसार जीवकाण्ड, गोम्मटसार कर्मकाण्ड, तिलोयपण्णत्ति, तत्त्वार्थसूत्र, आदि

2

दिगम्बर परम्परा में चार अनुयोग

(3) चरणानुयोग – आचरण सम्बन्धित, आहार–विहार, अणुव्रत, महाव्रत आदि का वर्णन
तत्त्वार्थसूत्र, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, पुरूषार्थ सिद्ध्युपाय, नियमसार, मूलाचार, आदि

(4) द्रव्यानुयोग – 6 द्रव्यों का जीव द्रव्य की प्रधानता एवं प्रत्येक द्रव्य की अविनाशिता की प्रधानता से वर्णन
समयसार, प्रवचनसार, वृहदद्रव्यसंग्रह, आदि

3

समयसारः लेखक आचार्य कुन्दकुन्द

आचार्य कुन्दकुन्दः लगभग 2000 वर्ष पूर्व दक्षिण भारत में जन्म, विदेहक्षेत्र गमन का उल्लेख दिगम्बर परम्परा के महान आचार्य

मंगल भगवान वीरो मंगल गौतमो गणी
मंगलं ..... , जैन धर्मोस्तु मंगलं।।

श्वेताम्बर परम्परा में स्थूलभद्रादयो,

दिगम्बर परम्परा में कुन्दकुन्दादयो

4

आचार्य महाप्रज्ञ समयसार के लिये लिखते हैं।

"Jainism is seasoned with a mature tradition of metaphysics and spirituality. The name of *Acārya* Kundakunda shines like a resplendent constellation in the sky of this tradition. He was an author of many treatises, **one of which is *Samayasāra*, which is the most outstanding one in the field of spirituality.** It is replete with many mystical ideas and many thoughts worth contemplation."

Reference
मुनि महेन्द्र कुमारजी, समयसार ग्रन्थ का अंग्रेजी अनुवाद , लाडनूं से 2009 में प्रकाशित , page (iii)

मुनि महेन्द्रकुमारजी समयसार के लिये लिखते हैं।

"The ancient philosophical treatises which deal with the topic of deeper metaphysical and epistemological expositions have a very important place in the studies of Jain philosophy. *Ācārya* Kundakunda's *Samayasāra* can be considered as one of the most important of such treatises, as far as the Jain authors are concerned. It has the same value in Jain tradition as the treatises/scriptures like *Brahma Sutra* in the *Vaidika* tradition and *Visuddhimaggo* in the Buddhist tradition. **In short, we can say that for anyone to understand the essence of Jain philosophy, *Samayasāra* has to be studied.**"

Reference
मुनि महेन्द्र कुमारजी, समयसार ग्रन्थ का अंग्रेजी अनुवाद , लाडनूं से 2009 में प्रकाशित , page (v)

प्राचीन टीकाएँ (समयसार की) (संस्कृत में)

(1) नाम : आत्मख्याति, लेखक आचार्य अमृतचन्द्र
(2) नाम : तात्पर्यवृत्ति, लेखक आचार्य जयसेन

नवीनतम टीका (अंग्रेजी में) (गाथा 1 से 144)
नाम : Soul Science
लेखक डॉ. पारसमल अग्रवाल
Publisher: Kundakunda Gyanpith, Indore,
Published in 2014.

शब्द समयसार का अर्थ
शुद्ध आत्मा, शुद्ध आत्म तत्त्व

क्या वर्णित हुआ है? इसका उत्तर गाथा 5 में।

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं॥५॥

अर्थः (इस ग्रन्थ में) मैं एकत्व–विभक्त आत्मा को निज वैभव से दर्शाउंगा। यदि मैं दिखा सका तो स्वीकार करना, यदि चूक जाऊँ तो छल ग्रहण मत करना।

समयसार में किस तरह के कथन हैं? झलक हेतु कुछ गाथाओं को देखते हैं?

गाथा 6 :

ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णादो जो सो दु सो चेव॥६॥

अर्थः ज्ञायक (आत्मा) न तो प्रमत्त होता है और न अप्रमत्त। इस प्रकार आत्मा शुद्ध है। ज्ञायक जो ज्ञात होता है वह (सदैव) वैसा ही है (एक जैसा)।

गाथा 15 :

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं॥१५॥

जो आत्मा को अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, एवं अविशेष देखता है वह सम्पूर्ण जिनशासन को देखता है। द्रव्यश्रुत एवं भावश्रुत युक्त।
प्रश्न : शरीर, परिवार, देश आदि से सम्बन्ध को स्वीकार किये बिना हमारा काम कैसे चल सकता है?

उत्तर : समयसार में आचार्य कुन्दकुन्द ने शरीर, परिवार, देश आदि से सम्बन्ध को भी यथायोग्य स्वीकारा है। जैन दर्शन का अनेकांत मुख्यतया इस तरह के गहन दार्शनिक बिन्दुओं के लिये बहुत आवश्यक है। व्यवहार नय शरीर, परिवार, देश से आत्मा का सम्बन्ध स्वीकार करता है। गाथा 15 के पूर्व गाथा 8 से 12 तक व्यवहार नय की आवश्यकता का वर्णन आचार्य कुन्दकुन्द ने किया है। अन्य। भी स्थान–स्थान पर अनेकान्त का उपयोग एवं दोनों नयों का उल्लेख किया है। गाथा 15 में जो कहा गया है वह निश्चय नय से है।

दोनों नयों को कुछ और समझने के लिये कुछ उदाहरण लेते हैं :

1. इस हवाईयात्रा में सीट नं. XX मेरी है। व्यवहार नय। सीट पर अधिकार बैठने के लिये व थोड़े समय के लिये है। इस जानकारी की उपयोगिता यह है कि अन्य व्यक्ति नहीं बैठेगा।

2. ऑफिस का यह कैबिन एवं इसमें रखा हुआ कम्प्यूटर मेरा है। (व्यवहार नय से)। इस जानकारी की उपयोगिता यह है कि अन्य इस कैबिन में कुछ दिन/माह/वर्ष नहीं बैठेगा। मालिक तो सेठ है या नियोक्ता है।

3. इस बैंक अकाउन्ट के रूपये मेरे हैं। यह मकान मेरा है। (व्यवहार नय)
4. यह शरीर मेरा है।
5. अभी जो क्रोध के भाव हुए थे उसके लिये मैं जिम्मेदार हूँ वे भाव मेरे थे (व्यवहार नय या अशुद्ध निश्चय नय)
6. जो पवित्रता एवं शुद्धता भगवान महावीर ने प्राप्त की वह शुद्धता उस आत्मा की है (व्यवहार नय या शुद्ध निश्चयनय)
7. मैं अविनाशी आत्मा हूँ। जो अविनाशी है उस पर ही मेरा स्वामित्व है। जो जाता और आता है उस पर मेरा स्वामित्व नहीं। मेरा है सो जावे नहीं। जावे सो मेरा नहीं। (परम शुद्ध निश्चय नय)

13

लाभः हर कथन की वैधता की सीमा पहचानना। सत्य समझ के लिये यह आवश्यक है। सत्य ही शिव व सत्य ही सुन्दर होता है इसको भी समझने का प्रयत्न उपयोगी हो सकता है।
व्यवहार नय के कथन भी उपयोगी हैं। कौन कौनसी सीट पर बैठेगा इस उद्देश्य से कहा जाता है कि सीट न XX आपकी है। इसके अभाव में या तो कथन बहुत लम्बे हो जायेंगे या अराजकता हो सकती है।

14

इसी सूची में 1 से 6 तक का स्वामित्व स्तर 7 को समझने में सहायक होता है। जब तक सहायक है तबतक स्वीकार्य है। ध्यान अवस्था में सत्य स्वामित्व की स्वीकृति एवं एहसास/अनुभव शान्तिदायक एव निर्जरा का कारण बनता है। सच्ची समझ होने के बाद ही सम्यग्दर्शन या धर्म का सच्चा प्रारम्भ कहलाता है।

15

गाथा 27

ववहारणओ भासदि जीवो देहो य हवदि खलु एक्को।
ण दु णिच्छयस्स जीवो देहो य कदा वि एक्कट्ठो॥२७॥

व्यवहार नय कहता है कि जीव एवं देह एक ही हैं।
किन्तु निश्चयनय के अनुसार जीव एवं देह कभी भी एक नहीं हैं। (27)
Analogy
व्यवहार नय कहता है कि सीट आपकी है
किन्तु निश्चयनय के अनुसार सीट आपकी नहीं है

16

गाथा 38 :

अहमेक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइयो सदारूवी।
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमेत्तं पि॥३८॥

वस्तुत, मैं सदैव एक, शुद्ध, अदृश्य एवं ज्ञानदर्शनमय हूँ। अन्य वस्तु का एक परमाणु भी मेरा नहीं है।

17

गाथा 51 :

जीवस्स णत्थि रागो ण वि दोसो णेव विज्जदे मोहो।
णो पच्चया ण कम्मं णोकम्मं चावि से णत्थि॥५१॥

राग, द्वेष, मोह, प्रत्यय, कर्मवर्गणा, नोकर्म (शरीर आदि) भी जीव के नहीं है।

18

गाथा 73 :
अहमेक्को खलु सुद्धो णिम्ममओ णाणदंसणसमग्गो।
तम्हि ठिदो तच्चित्तो सव्वे एदे खयं णेमि॥७३॥

वस्तुतः, मैं एक, शुद्ध, (परद्रव्य एवं राग-द्वेष से) ममता रहित, ज्ञान-दर्शनमय हूँ। इसी में स्थित होकर लीन रहते हुए इन समस्त (आस्रवों) का क्षय करता हूँ।

मूल बिन्दु : पूर्व सूची के 7वें स्तर की स्वीकृति कर्म क्षय का मार्ग बनती है।

प्रश्न : जब तक लीन नही रह सकते हो तब तक क्या हमें परोपकार आदि नहीं करना चाहिये?

उत्तर : स्वय का भी भोजन करना होता है व अन्य का उपकार करने के भाव भी होते हैं, प्रेरणा भी मिलती है, प्रेरणा देना भी चाहिये, किन्तु परोपकार करने के बाद कर्तृत्व का अहंकार कि 'मैंने ऐसा किया' मिथ्यात्व का पाप बन सकता है। अतः सब करते हुए भी कर्तृत्व का अहंकार या कर्तृत्व के प्रति स्वामित्व न होना यह गृहस्थ भूमिका में भी संभव हैं।

20

गाथा – 320 :

दिट्ठी जहेव णाणं अकारयं तह अवेदयं चेव।
जाणइ य बंधमोक्खं कम्मुदयं णिज्जरं चेव॥३२०॥

आत्मा तो नेत्र की तरह है जो किसी भी घटना की कारक व भोक्ता न होकर दर्शक है। आत्मा तो कर्मोदय, कर्म--निर्जरा, कर्म-बन्ध, मोक्ष का कारक व भोक्ता न होकर ज्ञाता--दृष्टा मात्र है।

21

गाथा 413 :

पासंडीलिंगेसु व गिहिलिंगेसु व बहुप्पयारेसु।
कुव्वंति जे ममत्तिं तेहिं ण णादं समयसारं॥४१३॥

जिन्हे गृहस्थी लिंग या मुनिलिंग को ग्रहण कर लिंग के प्रति आसक्तिभाव है उन्होंने समयसार को (आत्म तत्व को) नही समझा है।

22

गाथा 415 :

जो समयपाहुडमिणं पढिदूणं अत्थतच्चदो णादुं।
अत्थे ठाही चेदा सो होही उत्तमं सोक्खं॥४१५॥

जो आत्मा इस समयपाहुड़ ग्रन्थ को पढ़कर, अर्थ और तत्त्व से जानकर अर्थ में स्वयं को स्थापित करेगा वह आत्मा उत्तमसुख होगा।
(Note the wordings. The soul becomes bliss.)

23

सारांश : इस ग्रन्थ का सारांश कुछ ही पंक्तियों में संभव नहीं है। कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु निम्नानुसार ध्यान देने योग्य हैं।
*सभी आत्माएँ मूलतः समान हैं।

* सफलता एवं असफलता के समस्त बाहरी निशान अस्थायी हैं।

* सच्चा ज्ञानी बाहरी परिग्रह को या आन्तरिक परिग्रह को आत्मा से भिन्न समझता है।

* प्रत्येक आत्मा अपने आप में पूर्ण है, उसको पूरा करने के लिये कुछ नया मिलाने की आवश्यकता नहीं है।

नोट :- आत्मा और परिग्रह का भेदज्ञान हमारे दैनन्दिन कार्यों में रोड़ा न होकर लाभदायक भी बन सकता है।

24

Bibliography

1 *Ācārya Kundakunda's Samayasāra*, with Hindi and English Translation by Vijay K. Jain (Vikalp Printers, Deharadun, 2012)

2 *Ācārya Kundakunda's Samayasāra*, Commentary in Hindi by Aryika Gyanmati Mataji (Digamber Jain Trilok Shodha Samsthan Hastinapur, UP, 1990)

3 *Ācārya Kundakunda's Samayasāra* commentary in Hindi by *Ācārya* Gyansagaraji with translation of stanzas in Hindi-verses by *Ācārya* Vidhyasagaraji (Shri Digamber Jain Seva Samiti and Sakal Digamber Jain Samaj Ajmer, 1994)

4 *Pravacana Ratnakara*, Part 1 to 11, Lectures delivered by Shri Kanji Swami on *Samayasāra*, translated by Pt. Ratan Chandji Bharill in Hindi (Pundit Todarmal Smarak Trust, Jaipur, 1981)

5 *Ācārya Kundakunda's Samayasāra*, commentary in Gujarati by Himmatlal Jethalal Shah and its Hindi translation by Pundit Parmesthidasji, (Shri Digamber Jain Swadhya Mandir Songarh Gujarat, 1974)

6 (a) *Ācārya Kundakunda's Samayasāra*, Commentary in Hindi by Pundit Dr. Hukum Chandji Bharill (Pundit Todarmal Sarvodaya Trust, Jaipur, 2007)

(b) *Samayasāra Anushilan*. Commentary in Hindi by Pundit Dr Hukum Chandji Bharill (Pundit Todarmal Smarak Trust, Jaipur, 1995)

7 *Ācārya Kundakunda's Samayasāra*, Edited by Pundit Hemchandji Jain 'Hem', (Paras Mulchand Chatar Chritable Trust, Kota, 2010)

8 *Ācārya Kundakunda's Samayasāra*, Edited by Pundit Pannalalji Jain (Shri Paramshrut Prabhavak Mandal, Shrimad Rajchandra Ashram, Agaas, Gujarat, 1997)

9 *Ācārya Kundakunda's Samayasāra*, Commentary and translation in English by Shri Jethalal S. Zaveri and Muni Mahendra Kumarji (Jain Vishva Bharati University, Ladnun, Rajasthan, 2009)

26

10 *Ācārya Kundakunda's Samayasāra*, Commentary and translation in English by Professor A. Chakravarti (Bharatiya Jnanpith, New Delhi, 1989)

11 *Ācārya Kundakunda's Samayasāra*, Commentary and translation in English by J. L. Jaini (Sacred books of the Jainas, Vol VIII, The Central Jain Publishing House, Ajitashram, Lucknow, UP, 1930)

12 *Samayasāra Niscaya Aur Vyavahāra Kī Yātrā*, *Ācārya* Mahaprajna (Jain Vishva Bharati Prakashan, Ladnun, Rajasthan 1991)

13 *Ācārya Kundakunda's Samayasāra* Commentary and translation in English as 'Soul Science Part I' by Paras Mal Agrawal (Kundakunda Gyanpith, Indore 2014)

27

THANK YOU

For comments e-mail to :

parasagrawal@hotmail.com

28

डॉ.पारसमल अग्रवाल

मैं एक दीन-हीन, पुण्य पाप की प्रसन्नता एवं पीढा को झेलने वाला एक संसारी प्राणी हूं। इस प्रकार के कथनों को हम कई बार सुन चुके हैं, कई तरह से अनुभव कर चुके हैं व हजारों तरह से हम तर्क दे सकते हैं कि जीवन की यह एक सच्चाई है।

उज्जैन में [illegible] फरवरी १९९७ से आयोजित होने वाले शिविर के शिविरार्थी उक्त जीवन की सचाई से परे भी जो एक सौन्दर्यमयी सचाई है। उसका पाठ पढ़ने हेतु एकत्रित होने वाले हैं। आत्मा जिसे अशुद्ध कहा जा रहा है वह भी किसी अपेक्षा शुद्ध है। यदि शिविरार्थी जिस अपेक्षा से आत्मा शुद्ध है उसे अपेक्षा को समझ लें तो शिविर में भाग लेना सार्थक हो जायेगा मात्र यह कहना कि निश्चय नय से आत्मा शुद्द है, शब्द पर्याप्त नहीं है। निश्चय नय वाला विशेषण गौण करके वस्तु स्वरूप को पहले समझ लें व फिर उसकी खतौनी निश्चयनय में करें तो वस्तु स्वरूप भी समझ में आयेगा व निश्चय नय भी समझ में आयेगा। स्वर्णकार को २२ कैरेट के २४ ग्राम स्वर्णाभूषण में २२ ग्राम सोना भी ज्ञान में दिखाई दे रहा होता है व २ ग्राम तांबा भी ज्ञान में दिखाई दे रहा होता है। वह स्वर्णकार यह नहीं कहता है कि इस आभूषण में जो २२ ग्राम सोना है वह निश्चयनय से शुद्ध सोना है। वह स्वर्णकार तो निश्चयनय शब्द को भी नहीं जानता है परन्तु उसे स्वर्णाभूषण को समझ हो गई है कि वह अपने शिष्य पुत्र को यह बता सकता है कि कीमती माल २२ ग्राम है जिसे खरा सोना या शुद्ध सोना समझो। यदि उसका पुत्र २४ ग्राम वजन वाले स्वर्णाभूषण को ही सोना समझते हुए यह पूछे कि यह क्या गडबड है? सोना तो २४ ग्राम है व आप कहते है कि खरा सोना २२ ग्राम है। यह दो प्रकार का सोना कैसे। तब उसके उत्तर में पिता विस्तार से समझाता है जिसको संक्षेप में यों कहा जा सकता है कि २४ ग्राम सोना तब कहते हो वह व्यवहारनय से सोना कहा जाता है किन्तु सचाई तो यह है कि तांबे से पृथक जो धातु है वह २२ ग्राम है, वही निशच्यनय से सोना है या वही सोना वास्तव में होता है। शेष २ ग्राम तांबा तो सोने के साथ रहने से व्यवहार में सोना कहा जाता है। किन्तु वह सोना नहीं है। बात का मर्म पूरा समझने हेतु हम इसी उदाहरण को थोडा आगे बढाते हुए हम स्वर्ण से एक प्रश्न पूछते हैं-**हे २४ ग्राम स्वर्णाभूषण में स्थित सोने तेरा वजन कितना है?**

यदि इस प्रश्न का उत्तर सोना यह देता है कि **मेरा वजन वर्तमान में २४ ग्राम है किन्तु २ ग्राम मुझमें तांबा है तो क्या इस उत्तर को स्वीकार कर लोंगे?**

क्या आप सोने से यह उत्तर नहीं सुनना चाहोगे कि **मेरा वजन तो वर्तमान में भी २२ ग्राम है। मेरे साथ २ ग्राम तांबा है किन्तु वह मैं नहीं हूं। लेन-देन में व मुझे पहनने वाला यह समझ रहा है कि उसने २४ ग्राम सोना पहन रखा है। जिस अपेक्षा से वह पहनने वाला २४ ग्राम समझ रहा है उस पर भी मुझे कोई आपत्ति नहीं है।**

आत्मा के साथ भी आचार्य ऐसा ही प्रश्न पूछते हैं व ऐसा ही उत्तर समझाते हैं जिससें आत्मा को यह भली भांति समझ में आ जाये कि जो आत्मा है वही आत्मा है। आत्मा से पृथक अन्य अनात्मा आत्मा नहीं है। इस तथ्य को बहुत ही सुन्दर शब्दों में आचार्य अंमृतचन्द्र ने समयसार कलश क्रं.१८५ में इस प्रकार कहा है-

सिद्धान्तोडयमुदात्त चित्तचरितैर्मोक्षार्थिमिः सेव्यतां
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योतिः सदैवास्म्यहं।
एते ये तु समुल्लसंति विविधा भावाः पृथग्लक्षणा
स्तेऽहं नास्मि यतोडय ते मम परद्रवयं समग्रा अपि।।

इस कलश का भावार्थ बहुत ही प्रेरणास्पद है। आचार्य यह सीख दे रहे हैं कि मोक्षार्थि को इस सिद्धान्त का सेवन करना चाहिए कि मैं सदैव एक शुद्धं चैतन्य परम ज्योति हूं व मेरे से भिन्न लक्षण वाले जितने भाव (विकारी भाव क्रोधादि)प्रकट होते हैं वह मैं नहीं हूं।

5 (ग) कम्प्यूटर का विकास एवं भेदविज्ञान

-डा.पारसमल अग्रवाल
अनुप्रयुक्त भौतिक विज्ञान, विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन

शरीर एवं जीव की भिन्नता समझना सरल है किन्तु इन्द्रिय ज्ञान से ज्ञायक की भिन्नता या राग-द्वेष क्रोध आदि से ज्ञायक की भिन्नता समझना बहुत कठिन है। इस प्रकार की भिन्नता को समझने हेतु आधुनिक युग के कम्प्यूटर के विकास के ज्ञान से एक नवीन तर्क मिल सकता है। इस लेख में इसी तथ्य के संकेत दिए जा रहे हैं।

जोड़, बाकी, गुणा, भाग आदि कार्य कम्प्यूटर से होते हुए हम देखते हैं। हम यह भी जानते हैं कि कम्प्यूटर निर्जीव है। अतः इससे स्पष्ट होता है कि पहाड़े याद करने, गुणा- भाग करने जैसे दिमागी कार्य भी जीव के होना आवश्यक नहीं है। इसी प्रकार इन्द्रियों के निमित्त से होने वाले कई प्रकार के ज्ञान कम्प्यूटर या मशीनों में संभव होते हुए हमें दिखाई देते हैं। इस तथ्य को यदि हम समझ लें तो हमें यह स्वीकारने में कठिनाई नहीं आयेगी कि इन्द्रिय ज्ञान एवं जीव तत्व भिन्न हो सकते हैं। इसके विपरीत यदि हम इन्द्रिय ज्ञान एवं जीव को अभिन्न मान लेंगे तो हम कम्प्यूटर को आश्चर्य की निगाहों से देखेंगे एवं जीव द्रव्य के अस्तित्व पर ही शंका कर सकते हैं। इन्द्रिय ज्ञान की जीव से भिन्नता पहचानना फिर भी सरल है किन्तु राग- द्वेष, क्रोध, मोह आदि से आत्मा की भिन्नता समझना और भी कठिन बात है। समयसार में स्थान- स्थान पर राग की आत्मा से भिन्नता दिखाई है। उदाहरण के लिए निम्नांकित गाथाएं देखी जा सकती हैं -

कुछ मोह वो मेरा नहीं, उपयोग केवल एक मैं।
इस ज्ञान को ज्ञायक समय के, मोह निर्ममता कहे॥ (38)
उपयोग में उपयोग, को उपयोग नहिं क्रोधादि में।
है क्रोध क्रोध विषैं हि निश्चय, क्रोध नहिं उपयोग में॥ (181)
कर ग्रहण प्रज्ञासे नियत, ज्ञाता है सो ही मैं हि हूं
अवशेष जो सब भाव हैं, मेरे से पर ही जानना॥ (299)

जिन्होंने इन गाथाओं का मर्म नहीं समझा है उन्हें अब विज्ञान की एक नवीन क्रान्ति से या तो धक्का लग सकता है या इन गाथाओं का मर्म समझ में आ सकता है। निकट भविष्य में ऐसे कम्प्यूटर चलित रोबोट बनने वाले हैं जिनकी याददाश्त मनुष्य के मस्तिष्क के मुकाबले की होगी वे न केवल मनुष्य का चेहरा एवं आवाज पहचान सकेंगे अपितु डांट-फटकार सुनकर रूदन भी कर बैठेंगे या वापस तीखे शब्दों से प्रतिकार करते हुए क्रोध भी प्रदर्शित कर सकेंगे। इसी तरह स्नेह के मनोभाव भी ऐसे कम्प्यूटर चलित रोबोट कर सकेंगे।

इस प्रकार के प्रयोगों को देखकर कुछ व्यक्ति कहेंगे कि मनुष्य भी एक तरह की मशीन मात्र है व दिमाग एक तरह का कम्प्यूटर है। यानी कुछ व्यक्ति जीव तत्व को पूर्णतया नकार सकते हैं। किन्तु समयसार की उक्त गाथाओं का मर्म समझने में रूचि रखने वालों को क्रोध से भिन्न ज्ञायक तत्व को स्वीकार करने में व समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

निर्जीव कम्प्यूटर का क्रोध ज्ञानी को बिल्कुल भी अचंभित नहीं करेगा। ज्ञानी जानता है कि हमारे समस्त क्रोध आदि भाव अचेतन द्रव्य के निमित्त से होने वाले भाव हैं व वह तो मात्र ज्ञाता या ज्ञायक है। इसके विपरीत अज्ञानी इन भावों को इसी तरह अपना मानता है जिस तरह अधिक अज्ञानी शरीर की क्रियाओं को भी अपनी क्रियाएं मानता है।

Vol. - 21, No. - 1, January - Mrach 2009, 31-37

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapītha, Indore

Samayasāra Gāthā 3 and the Modern Science

■ Paras Mal Agrawal

सारांश

आत्मा को समय भी कहा जाता है। पुद्गल का एक परमाणु भी समय कहलाता है। इसी तरह कालाणु व अन्य द्रव्य भी समय नाम पाते हैं। समयसार की गाथा 3 में आचार्य कुन्दकुंन्द कहते हैं कि समय सर्वत्र सुन्दर होता है व समयों के बंधन की कथा में विसंवाद असुन्दरता है। यद्यपि पुद्गल परमाणु समय है किन्तु कई परमाणुओं का संयोग यानी पुद्गल का स्कन्ध समय न होकर समयों का पिण्ड है। आचार्य अमृतचन्द्र आत्मख्याति टीका में बताते हैं कि समयसार की गाथा सभी द्रव्यों के लिये है। पुद्गल की बात आते ही भौतिक विज्ञान का महत्व भी हो जाता है। जब कहते हैं कि पुद्गल के परमाणु में सुन्दरता है व स्कन्ध में असुन्दरता या बंधन की कथा में विसंवाद या असुन्दरता है तो हम कई प्रश्नों द्वारा सुन्वरता एवं बंधन के बारे में जानना चाहते हैं। आचार्य समझाना चाहते है कि पुद्गल का परमाणु अविनाशी होता है अतः सुन्दर है। किन्तु कई परमाणुओं का पिण्ड या संयोग शाश्वत नहीं रह सकता है। जो मिलते हैं वे कभी बिछुड़ते हैं। जो शाश्वत हैं वही शाश्वत सत्य हैं व जो शाश्वत सत्य है वही सुन्दर है।

क्या पुष्प सुन्दर नहीं है ? इस प्रश्न का एक उत्तर दो दिन पुराने मुरझाये हुए पुष्प को जब फूलदान से निकालकर फेंका जाता है तब मिलता है। पुष्प की तरह पुद्गल का एक अविभागी परमाणु कभी नहीं मुरझाता है। जब पुष्प मुरझा रहा होता है तब भी पुष्प के अन्दर का प्रत्येक पुद्गल परमाणु ताजा रहता है।

आत्मा की तरह पुद्गल परमाणु भी कभी नहीं जलता है या तलवार से नहीं कटता है या पानी से नहीं गीला होता है - यह बात आज के सूक्ष्म विज्ञान से समझने पर आत्मा की अजरता-अमरता भी अच्छी तरह समझ में आ सकती है।

क्या मनुष्यों का सामाजिक बंधन असुन्दर होता है ? उत्तर नहीं, यदि सभी सदस्यों की स्वतंत्रता का भी सभी द्वारा सम्मान हो। अस्वतंत्रता असुन्दर होती है। तथाकथित बंधन अवस्था में भी प्रत्येक की स्वतंत्रता की स्वीकृति में सुन्दरता है।

बंधन से सबंधित कई रोचक वैज्ञानिक तथ्य भी यहां प्रस्तुत किये गये हैं।

(1) दो हाइड्रोजन के एटम जब रासायनिक बंधन में बंधकर हाइड्रोजन मालिक्यूल बनाते हैं तब एक सेकेण्ड के करोड़वें भाग समय में एक करोड़ तीस लाख बार एक दूसरे को धक्का देकर दूर भेजते है- व इतनी ही बार थोड़ा ही दूर जाने पर एक दूसरे को आकर्षित होकर पास आते है। (अति अशांत अवस्था)

(2) जब स्टील की चाबी के छल्ले से उंगली में पहनी हुई सोने की अंगूठी टकराती है तब कई इलेक्ट्रानों की अदला-बदली छल्ले एवं अंगूठी के बीच हो जाती है।

* Retd. Prof. of Physics 11, Bhairav Dham Colony, Sector 3, Hiran Magri, Udaipur, Rajasthan 456 002, India

कुछ इलेक्ट्रान जो अब तक सोने के अंश थे अब वे लोहे के अंश हो जाते हैं। उनका इठलाना समाप्त हो जाता है। ये इलेक्ट्रान यह संदेश देते हैं कि क्षणिक संयोगों से क्या इठलाना ? क्या घबराना ?

(3) कितने ही वर्षों का बंधन क्यों न हो, स्वतंत्र रासायनिक एटम अपने गुण नहीं छोड़ता है। शक्कर से एक हाइड्रोजन एटम निकाला जाये या नीम की पत्ती से, दोनों हाइड्रोजन एटम एक जैसे होते हैं, कोई ज्यादा मीठा या ज्यादा कड़वा नहीं होता है। बंधन के बावजूद समय के गुणधर्म नहीं बदलते हैं।

(4) क्या दो हाइड्रोजन एटम जब रासायनिक बंधन में होते हैं तब उन्हें जोड़ने के लिये कोई गोंद या तिनका होता है ? उत्तर नहीं, वे तो स्वयं की शक्ति से ही नजदीकी बनाये रखते हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द इस गाथा में यह सन्देश देना चाहते हैं कि हमें हमारे समय (आत्मा) की एवं अन्य सभी आत्माओं की सुन्दरता पहचाननी चाहिये।

Introduction to -

Ācārya Kundakunda is one of the most reverend *Ācārya* of Digambara Jaina Tradition. In the Māngalic verse his name is recited just after *Bhagavāna Mahāvīra* and *Gaṇadhara* Gautam. Among various scriptures written by *Ācārya* Kundakunda, the *Samayasāra* (1) is considered as the most important scripture as it covers the basic philosophy. *Gāthā* (verse) number 3 of this scripture has deep philosophical significance. As the concept described in this verse includes the non-living substance also, its discussion in the light of modern science is also valuable in assimilating the concept. We shall here first state the original verse in Prakrit and then shall proceed with its English translation, explanation and discussion after mentioning the *Saṁskṛita* equivalent given by *Ācārya Amṛtcandra.*

एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोए।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होइ ॥3॥

eyattaṇicchayagado samao savvattha sundaro loe
bandhakahā eyatte teṇa visaṁvādiṇī hoi (3)

एकत्वनिश्चयगतः समयः सर्वत्रसुन्दरो लोके।
बन्धकथा एकत्वे तेन विसंवादिनी भवति ॥3॥

Translation : Everywhere in the cosmos a Samaya uncontaminated with others is beautiful. The story of bonding leads to a conflicting dialogue.

II Explanation

In Gāthā 2, two categories of Samaya (soul) have been defined. Here the *Ācārya* wants to highlight that out of the two categories (self-samaya, and other-samaya) the Self-Samaya category is beautiful and the other category leads to conflicting dialogue.

In the commentary of this verse, *Ācārya Amṛtcandra* has taken a broader meaning of the word 'Samaya'. **Here by Samaya he means any eternal substance whether it is soul or matter.** When we talk of non-living substance then we remember modern science specially physics and Chemistry.

3 (ग) निमित्त-उपादान एवं भौतिक विज्ञान

निमित्त-उपादान के भली-भाँति समझने में जिनागम के साथ आधुनिक भौतिक विज्ञान भी हमें मदद कर सकता है, क्योंकि निमित्त-उपादान का सम्बन्ध छहों प्रकार के द्रव्यों से है। रूपी पदार्थों की कारण-कार्य व्यवस्था समझने में भी जब हम साधारणतया भूलें करते हैं, तो आत्मा जैसी अरूपी एवं सूक्ष्म वस्तु के स्वरूप को समझने में शंकाएँ होना स्वाभाविक ही हैं। भौतिक पदार्थों को ठीक प्रकार से न समझने के कारण ही इसप्रकार के प्रश्न होते हैं। हम प्रत्यक्ष देखते हैं। "किसान अपने श्रम से अनाज का उत्पादन करता है, जहर से मृत्यु हो जाती है,' तो आप यह कैसे कहते हैं कि निमित्त कुछ नहीं करता, आदि? अन्य कुछ चर्चा करने के पूर्व 'करने' शब्द का अभिप्राय समझना होगा, तभी निमित्त कुछ करता है या नहीं – यह बात स्पष्ट हो सकेगी। कर्त्ता एवं अकर्त्ता का अभिप्राय आचार्य कुन्दकुन्द समयसार परमागम की १०४वीं गाथा में इसप्रकार समझाते हैं –

'दव्व गुणस्स य आदा ण कुणदि पोग्गलमयम्हि कम्मम्हि।
तं उभयमकुव्वंतो तम्हि कहं तस्स सो कत्ता॥'

आत्मा पुद्गलमय कर्म के द्रव्य को तथा गुण को नहीं करता, अतः उन दोनों को न करता हुआ वह उसका कर्त्ता कैसे हो सकता है?

भावार्थ यह है कि आत्मा को पुद्गल का कर्त्ता तभी कहा जा सकता है जब कि आत्मा किसी पुद्गल परमाणु[1] का उत्पादन कर सकता हो या किसी पुद्गल में नए गुण पैदा कर सकता हो। चूंकि आत्मा ये दोनों कार्य नहीं कर सकता है, अतः वह अकर्त्ता ही है।

दार्शनिक दृष्टि से एवं वैज्ञानिक दृष्टि से 'कर्त्ता' एवं 'अकर्त्ता' की यह परिभाषा अत्यन्त मौलिक है। तर्क की कसौटी पर भी यह परिभाषा खरी उतरती है, क्योंकि जो 'उत्पादन' या 'गुणों में परिवर्तन' नहीं कर सकता है, वह कर्त्ता कहलाने का अधिकारी नहीं है। अब हमें यह विचार करना है कि क्या वैज्ञानिक दृष्टि से आत्मा 'उत्पादन' या 'गुणों में परिवर्तन' कर सकता है या नहीं?

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में एक सरल लौकिक उदाहरण देकर विषय को स्पष्ट करते हैं: –

टिप्पणी :– [1] जैनदर्शन एवं विज्ञान की शब्दावली का भेद ध्यान में रखते हुये कथन का अभिप्राय निकालना होगा। जैनदर्शन का पुद्गलपरमाणु विज्ञान के परमाणु से भिन्न है। पुद्गल शब्द में विज्ञान के द्रव्य (Matter) एवं उर्जा (Energy) दोनों गर्भित हो जाते हैं। पुद्गल का सबसे छोटा खण्ड जिसके और अधिक खण्ड नहीं हो सकते – उसे जैनदर्शन में पुद्गल का परमाणु कहा है। विज्ञान अभी तक ऐसे अविभागी पुद्गल परमाणु तक नहीं पहुंचा है। जैनदर्शन की शब्दावली में विज्ञान का परमाणु एक स्कन्ध है। इसीप्रकार ऊर्जा का एक क्वाण्टम (जैसे फ़ोटॉन) भी एक स्कन्ध ही है।

जैसे एक डॉक्टर मरीजों की चिकित्सा करके दस-दस के दस नोट अर्जित करके घर लाता है। डॉक्टर का पुत्र उन दस-दस के नोटों के बदले एक सौ रुपये का नोट ले आता है। अब विचार करें कि यह सौ रुपये का नोट कौन कमाकर लाया ? कमाई तो वास्तव में डॉक्टर ने ही की थी, पुत्र ने तो उन नोटों का मात्र रूपान्तर किया है। क्या पुत्र यह दावा कर सकता है कि यह सौ रुपये का नोट वह कमाकर लाया है ? क्या रूपान्तरण मात्र से पुत्र को नोट कमाने का श्रेय मिल सकता है ? यह एक बहुत ही स्पष्ट स्थिति है कि पुत्र ने तो मात्र नोटों का रूप बदला है, रुपया अर्जित नहीं किया है.....।'

इसी उदाहरण के आधार पर एक वैज्ञानिक तथ्य समझना चाहते हैं। कोयला व घासलेट जलने पर जगत को ऐसा दिखाई देता है कि कोयला या तेल जल गया है, किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि इससे भिन्न है। उसकी दृष्टि में वस्तुतः कुछ भी जलकर नष्ट नहीं हुआ, (इस कथन का वैज्ञानिक आधार एवं रहस्य समझने हेतु पाद टिप्पणी क्र० २ देखिए)। यदि वैज्ञानिक जैनदार्शनिकों की भाषा में इस कथन को कहना चाहें तो कहेंगे कि व्यवहारनय से वस्तु जलती है, किन्तु निश्चयनय से वस्तु नहीं जलती है। इसीप्रकार निश्चयनय से वस्तु सड़ती नहीं, गलती नहीं, नष्ट नहीं होती आदि।

'ऊर्जा न तो पैदा की जा सकती है और न ही नष्ट की जा सकती है' – यह विज्ञान का मौलिक सिद्धान्त है एवं विज्ञान के विद्यार्थी हायर सैकण्डरी में ही यह बात पढ़ चुके होते हैं। ऊर्जा का तो मात्र रूप बदलता है, उत्पादन व विनाश नहीं होता। जैन दार्शनिकों की भाषा में इन वैज्ञानिक तथ्यों को इसप्रकार कहा जायेगा – 'ऊर्जा का उत्पादन नहीं किया जा सकता' – यह निश्चयनय का कथन है, ऊर्जा का रूपांतरण होता है' यह पर्याय बदलनेवाली बात है; एवं 'ऊर्जा का उत्पादन, खपत, बचत आदि' – ये व्यवहारनय के कथन हैं।

एक परमाणु बिजली घर का वैज्ञानिक यह जानता है कि ऊर्जा का वह उत्पादन नहीं करता है, ऊर्जा तो परमाणु में निहित है, वही बिजली के रूप में रूपान्तरित होती है, किन्तु उसी बिजलीघर का मजदूर जो वैज्ञानिक तथ्यों से अनभिज्ञ है – यह मान सकता है कि हम ऊर्जा का उत्पादन कर रहे हैं। वैज्ञानिक अपने को ऊर्जा का अकर्त्ता मानता है और मजदूर कर्त्ता। इसीप्रकार सम्यग्दृष्टि (ज्ञानी) स्वयं को पर का अकर्त्ता मानता है व मिथ्यादृष्टि कर्त्ता।

टिप्पणी – २. कार्बन के जलने पर विचार करें :–

$$C + O_2 \rightarrow CO_2$$

यानी कार्बन + ऑक्सीजन→कार्बनडाइऑक्साइड स्पष्ट है कि जलने के पूर्व 22(6+8+8) इलेक्ट्रॉन, 22 प्रोटॉन व 22 न्यूट्रॉन थे तथा जलने के बाद कार्बनडाइऑक्साइड में भी 22 इलेक्ट्रॉन, 22 प्रोटॉन एवं 22 न्यूट्रॉन रहते हैं। फिर क्या जला ? गहन अध्ययन से स्पष्ट होगा कि इस प्रक्रिया में केवल इन कणों के आधार में ही परिवर्तन हुआ है। किसी का भी विनाश नहीं हुआ है।

यह एक रासायनिक प्रक्रिया का उदाहरण है। इसीप्रकार नाभिकीय विखण्डन एवं संलयन में भी विभिन्न संरक्षण नियमों की वैधता देखी जा सकती है।

आइन्सटीन के द्रव्यमान ऊर्जा तुल्यता समीकरण ($E=MC^2$) को याद करते हुये इलेक्ट्रॉन एवं पाजिट्रॉन के विनाश एवं गामाकणों की उत्पत्ति, परमाणु ऊर्जा के रहस्य आदि को भी 'ऊर्जा के – 'अविनाशिता सिद्धान्त' के अन्तर्गत लिया जाता है।

बहिर्लुठति यद्यपि स्फुटबनंत शक्तिः स्वयं,
तथाप्यपर वस्तुनो विशति नान्यव स्त्वन्तरं।
स्वभावं नियतं यत्तः सकलमेव वास्त्वष्यते,
स्वभाव चलनाकुलः किमिह मोहितः क्लिश्यते ।।

जिसकी स्वयं अनंत शक्ति प्रकाशमान है, ऐसी वस्तु यद्यपि अन्य वस्तु के बाहर लोटती है, तथापि अन्य वस्तु अन्य वस्तु के भीतर प्रवेश नहीं करती; क्योंकि समस्त वस्तुएँ अपने-अपने स्वभाव में निश्चित हैं – ऐसा माना जाता है। ऐसा होने पर भी मोहित जीव अपने स्वभाव से चलित होकर आकुल होता हुआ क्यों कलेश पाता है ?"

कुल मिलाकर आचार्य सुख का मार्ग बताना चाहते हैं। अध्यात्म में आत्मसुख ही प्रयोजनभूत है। निमित्त-उपादान की यह चर्चा भी निश्चयनय द्वारा प्ररूपित शुद्धात्मा को ही प्रतिपादित करने के लिए की गई है। वह शुद्धात्मा हमारी दृष्टि में शीघ्र प्राप्त हो – यही भावना है।

Vol. - 24, Issue 2, April - June, 2012, 39-47

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapitha, Indore
ISSN 0971-9024

Who is the doer of a rainfall? Can engineers produce electricity?

■ Paras Mal Agrawal*

सारांश

मानवीय कमजोरी है कि वह प्रत्येक घटना के कर्त्ता का नाम जानना चाहता है। वह पूछता है कि पानी कौन बरसाता है ? भूकम्प कौन भेजता है ? किन्तु आधुनिक भौतिक विज्ञान में 'कौन' शब्द को स्थान नहीं है। भौतिक विज्ञान यह पूछता है कि पानी कैसे बरसता है? भूकम्प कैसे आता है ? अध्यात्म विज्ञान में आचार्य कुन्दकुन्द ने कौन कर्त्ता है इस प्रश्न का विज्ञान सम्मत उत्तर दिया है। उन्होंने संबंधित द्रव्य को ही यानी स्वयं को ही स्वयं का कर्त्ता बनाकर जो उत्तर दिया है वह आधुनिक विज्ञान के पूर्णतया अनुकूल है।

सोने की डली से सोने का एक आभूषण किस क्रम से कितनी कटाई–छटाई, घिसाई–गलाई-जलाई आदि होने पर बनता है, इसका उत्तर भौतिक विज्ञान दे सकता है, किन्तु सुनार को वह उस आभूषण का जनक नहीं मानता है। ऑटोमैटिक प्लास्ट या रोबोट विज्ञान इस तरह की मान्यता पर ही आधारित है। भौतिक विज्ञान इस बारे में चुप रहता है कि सुनार को कितना श्रेय मिलना चाहिये। पर धर्म-विज्ञान के व्यावहारिक पक्ष को सुनार के पेट का भी ख्याल रखना होता है, यानी धर्म-विज्ञान को व्यवहार का भी यथोचित ख्याल रखते हुए व्यवहार-कर्त्ता को उचित परिप्रेक्ष्य में स्वीकारने की आवश्यकता होती है। इसी तरह एक कांच की खिड़की को एक बालक पत्थर फेंककर तोड़ता है तो समाज में व्यवस्था हेतु बालक को कांच फोड़ने का कर्त्ता (भाव करने का कर्त्ता) भी व्यवहार में बताना आवश्यक हो जाता है। वह बालक वास्तव में कर्त्ता है या कर्त्तापन व्यवहार की आवश्यकतानुसार आरोपित किया जाता है ? इस प्रश्न का विश्लेषण कई तरह से उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

अपार मेहनत, साधना, त्याग आदि से एक मां अपने बच्चे की मां जनती है व बच्चे का लालन–पालन करती है। बच्चे को मां का योगदान कभी नहीं भूलना चाहिए। यह अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु यदि मां अपने योगदान के प्रति आसक्ति भाव रखकर दुःखी होती है तो ऐसी मां का दुःख कम करने की दवा मां के हाथ में धर्म–विज्ञान, कर्त्ता–कर्म व निमित्त–उपादान की सही समझ के माध्यम से प्रदान कर सकता है किन्तु भौतिक–विज्ञान यहां भी मौन रहता है।

आज समाज में डिप्रेशन एक गंभीर समस्या है। बहुत व्यक्तियों के मुंह से यह सुनने को मिलता है कि मेरे से जो कार्य, निर्माण, सेवा, योगदान आदि हुए हैं उसका उचित प्रतिफल मुझे नहीं मिल रहा है। दूसरी तरफ कई ऐसे व्यक्ति भी पश्चाताप से दुःखी हैं जो यह मानते हैं कि वे उनके बच्चों को उच्च स्तर की शिक्षा व सुरक्षा नहीं दे पाये हैं। इस शोध लेख में वर्णित विज्ञान एवं अध्यात्म के गहन सत्य ऐसे कई व्यक्तियों के लिये एवं ज्ञान–पिपासुओं के लिये उपयोगी सिद्ध हो सकेंगे।

* 11-Bherav Dham Colony, Hiran Magri, Sector 3, Udaipur, Rajasthan 313002, Parasagrawal@hotmail.com

हमारा परिचय (प्रश्न एक, उत्तर अनेक)

जब अन्य द्वारा हमसे यह पूछा जाये - 'आप कौन हैं?', तब उत्तर निम्नांकित प्रकार के होंगे

(व्यावहारिक परिचय)
मनुष्य, भारतीय, अमरीकी, पुत्र, मित्र, खिलाड़ी, व्यापारी, विद्वान, साधु, सुन्दर, धनवान .....
(उचित विशेषणों एवं संबंधों सहित उक्त पदवियाँ)

इसकी उपयोगिता क्या है?
लोक व्यवहार इस प्रकार के उत्तर से ही चलता है।

सावधानी
1. आवश्यकतानुसार पर्याप्त एवं सही परिचय की समझ से व्यक्ति की प्रामाणिकता बनती है।
2. दुनिया के सामने हम कई रूपों में होते हैं किन्तु विभिन्न रूपों में रहते हुए भी हमारे असली या स्थायी परिचय को नहीं भूलना चाहिये।

जब यह प्रश्न हम स्वयं ही स्वयं से पूछें तब उत्तर दो प्रकार के होंगे।

(बदलने वाला परिचय)
अभिमानी, लालची, क्रोधी, दुःखी, प्रसन्न, तनावग्रस्त, रागी, द्वेषी,.....

इसकी उपयोगिता क्या है?
इस परिचय से हमें ज्ञात हो सकता है कि हमारी आत्मा का विकास कितना हुआ है। यदि तनावग्रस्त एवं दुःखी हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि आत्मा का विकास अल्प हुआ है। स्थायी परिचय को न समझने के कारण बदलते हुए परिचय को ही अपना स्थायी परिचय मान लेना दुःख एवं तनावों का कारण बनता है।

सावधानी
हम स्वयं हमारे सामने भी विभिन्न रूपों में बदलते हुए आते हैं। किन्तु इन सभी विभिन्न रूपों में रहते हुए भी हमारे असली या स्थायी परिचय को नहीं भूलना चाहिये। बदलते हुए रूपों को स्थायी मानने की भूल भी नहीं होना चाहिये।

(स्थायी परिचय)
सदैव एक जैसा हूँ, ज्ञान एवं चेतना लक्षण वाला हूँ। समस्त विकारों व वासनाओं से परे हूँ। समस्त अन्य पदार्थों से पृथक हूँ।

इसकी उपयोगिता क्या है?
यह शाश्वत वास्तविकता है जिसकी स्वीकृति एवं समझ में सुख एवं अस्वीकृति में दुःख है। इस सुख या आनन्द की प्राप्ति हेतु इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं होती है।

सावधानी
जिस प्रकार निवास स्थान का स्थायी पता बताने हेतु मकान का रंग बताना आवश्यक नहीं होता है, रंग का उल्लेख गौण किया जाता है, इसका अर्थ यह नहीं होता कि मकान रंगहीन है। इसी प्रकार आत्मा के स्थायी परिचय के आधार पर अपने को समझने हेतु बदलते हुए परिचय या लौकिक परिचय को गौण करने की आवश्यकता है, नकारने की आवश्यकता नहीं है।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के बढ़ते चरण

- **कैंसर रोगी के लिए सिन्थेटिक श्वासनली**
स्वीडन के शल्यचिकित्सकों ने एक 30 वर्षीय कैंसर ग्रस्त श्वासनली को हटाकर एक सिन्थेटिक श्वासनली का सफल प्रत्यारोपण किया। श्वासनली मिनुस्कूल प्लास्टिक फाइबर से बनाई गई है। इसकी आन्तरिक सतह पर अस्थिमज्जा से प्राप्त स्टेम कोशिकाएं आवरित है। इस प्रकार बनी यह श्वासनली कैंसर रोगियों के लिए एक नई आशा की किरण है।

- **मस्सा – बवासीर की सरल ऑपरेशन विधि**
दिल्ली एवं इटली के चिकित्सकों ने संयुक्त रूप से मस्सा-बवासीर के रोगियों के ऑपरेशन की नई सरल अल्पावधि की विधि विकसित की है। मेक्स हॉस्पिटल के डॉ. प्रदीप चौबे के अनुसार विडियो एसीस्ट एण्ड फिस्टुला ट्रीटमेंट नामक दर्दरहित तकनीक में एण्डोस्कॉपिक उपचार में शल्य क्रिया के घाव नहीं बनते और मलद्वार की पेशियों को हानि नहीं पहुँचती। इस विधि में उपचार के बाद ड्रेसिंग एवं औषधि की आवश्यकता नहीं होती।

- **शीघ्र व सटीक रक्त जाँच**
वर्तमान में रक्त की जांच में 24 घंटे का समय लगता है जबकि सीकर के मुकेश शर्मा की नवीन शोध विधि से यह कार्य आधे घंटे में हो सकेगा। इंटरनेशल जर्नल ऑफ करंट रिसर्च ने मान्यता दी है कि सोयाबीन में उपस्थित लेक्टिन नामक प्रोटीन रक्त कोशिकाओं में उपस्थित शर्करा को पकड़ता है और एंटीजन को भी पहचान लेता है जिससे मानव रक्त को अलग-अलग समूहों में बांट देता है। यह विधि अपराध विशेषज्ञों के लिए अधिक उपयोगी होगी।

- **'हाथघड़ी' नापेगी रक्तचाप**
अब तक रूधिर दाब या रक्तचाप का मापन ऊपरी भुजा में स्फिगनोमीटर लगाकर किया जाता है किन्तु ब्रिटेन के स्वास्थ्य विभाग के अनुदान से अनुसंधानकर्ताओं ने एक हाथघड़ी जैसा यंत्र विकसित किया है जो अधिक शुद्धता व सुविधा से रक्तचाप का मापन कर सकेगा। प्रो. ब्रायन विलियम्स ने इस यंत्र को अद्भुत बताया क्योंकि ऊपरी बाहु में किया गया रक्तचाप का माप कभी-कभी सही स्थिति नहीं बता पाता। नवविकसित इस यन्त्र द्वारा प्रदर्शित रक्तचाप हृदय की धमनी के रक्तचाप से पर्याप्त मेल रखता है अतः यह यन्त्र भविष्य की आशा है जो आगामी दो वर्षों में घर-घर तक पहुँच सकेगा।

- **नेजल स्प्रे से फ्लू का टीका**
जर्नल ऑफ जनरल वाइरोलोजी में प्रकाशित शोध पत्र के अनुसार वैज्ञानिकों ने 'कृत्रिम सार्वभौमिक फ्लू टीके' का निर्माण कर चूहों पर प्रयोग किया गया है जो सभी प्रकार के फ्लू में प्रतिरोधकता प्रदर्शित करता है। चूहे पर किये गये प्रयोगों की सफलता से संभावना बनी है कि इस टीके को एक नेजल स्प्रे के रूप में मानव काम में ले सकेंगे और फ्लू से राहत पा सकेंगे।

कुछ वैज्ञानिक तथ्य

1. सूर्य से पृथ्वी की औसत दूरी सूर्य के व्यास से 108 गुना है।
2. चन्द्रमा से पृथ्वी की औसत दूरी चन्द्रमा के व्यास से 108 गुना है।
3. सूर्य का व्यास पृथ्वी के व्यास से 109 गुना है।
4. 28000 रू. प्रति 10 ग्राम की दर से एक रुपये का सोना यदि विश्व की 7 अरब आबादी में वितरित किया जाये तो प्रत्येक व्यक्ति को 15 करोड़ 60 लाख सोने के अणु प्राप्त होंगे।
5. हाइड्रोजन का एक अणु (H_2) एक सैकण्ड के एक करोड़वें भाग जितने समय में एक करोड़ तीस लाख कंपन करता है।

✍ डॉ. पारसमल अग्रवाल

विश्व की जनसंख्या

संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष ने 31 अक्टूबर 2011 को दुनिया की आबादी 7 अरब होने की घोषणा की है। विश्व के 10 अत्यधिक जनसंख्या वाले देशों में केवल तीन विकसित देश अमरीका, रूस एवं जापान शामिल है। भारत में हर मिनट 51 बच्चों का जन्म होता है। इनमें 11 उत्तर प्रदेश में पैदा होते हैं। भारत की वर्तमान जनसंख्या 1 अरब 21 करोड़ है।

गणित-वर्ष

केन्द्र सरकार ने भारतीय गणितज्ञ श्रीनिवास रामानुजम की 125 वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में वर्ष 2012 को 'राष्ट्रीय गणित वर्ष' और 22 दिसम्बर को 'राष्ट्रीय गणित दिवस' घोषित किया है।

Mamta Printers # 9829796632

लोकविज्ञान

विज्ञान समिति, उदयपुर

दिसम्बर, 2011

ब्रह्माण्ड में जीवन

- हमारी पृथ्वी सौर परिवार का सदस्य है। जिसका व्यास 12800 किलोमीटर है। बुध, शुक्र, मंगल, गुरु, शनि आदि भी हमारे सौर परिवार के सदस्य हैं। चन्द्रमा पृथ्वी का उपग्रह है।
- हमारी आकाश गंगा (Galaxy) में 100 अरब तारे हैं। ज्यादा दूरी के कारण तारे हमें बहुत छोटे दिखाई देते हैं। सूर्य स्वयं एक तारा है।
- हमारे ब्रह्माण्ड में एक हजार अरब आकाश गंगाएं हैं। हमारे ब्रह्माण्ड के अतिरिक्त भी कई ब्रह्माण्ड और भी हो सकते हैं।
- हमारे ब्रह्माण्ड में लगभग - 100,000,000,000,000,000,000,000 (एक के आगे 23 शून्य) तारे हैं।
- यदि हम औसतन एक तारे के साथ एक ग्रह मान लें तो - 100,000,000,000,000,000,000,000 (एक के आगे 23 शून्य) पृथ्वी सरीखे ग्रह हमारे ब्रह्माण्ड में हैं।
- एक अनुमान के अनुसार एक प्रतिशत ग्रहों पर जीवन की संभावना है। यानि हमारे ब्रह्माण्ड में 100,000,000,000,000,000,0000 (एक के आगे 21 शून्य) ग्रहों पर जीवन की संभावना है।
- जिन ग्रहों पर जीवन की सम्भावना है उनमें से 10,000 ग्रहों में एक ग्रह पर बुद्धियुक्त प्राणियों की सम्भावना है अर्थात् 10,000,000,000,000,000,000 (एक के आगे 17 शून्य) ग्रहों पर।
- कुछ ग्रहों पर हमारे से बहुत अधिक या बहुत कम बुद्धि वाले प्राणी होने की भी संभावना है। स्टीफन हाकिंग के अनुसार ऐसे रासायनिक घटक, रूप एवं बुद्धिवाले प्राणी भी अन्यत्र हो सकते हैं जिनकी कल्पना वैज्ञानिक उपन्यासकार भी नहीं कर पाये हैं।
- कुछ ग्रहों पर अत्यन्त दुःखी या अत्यन्त सुखी प्राणी भी होने की सम्भावना है।
- अत्यन्त दुःखी प्राणियों वाले ग्रहों को नरक और सुखी प्राणियों के ग्रहों को स्वर्ग भी कह सकते हैं।
- वैज्ञानिक धारणाओं के अनुसार वर्तमान में उपलब्ध साधनों से अन्य ग्रहों के प्राणियों तक पहुँच सकने की संभावना नगण्य है।

✍ प्रो. पी. एम. अग्रवाल

सम्पादन–संकलन

प्रो. एन. एल. गुप्ता, प्रो. के.एल. तोतावत, श्री प्रकाश तातेड़, डॉ. एम. के. भटनागर, डॉ. के.एल. मेनारिया

विज्ञान समिति, रोड़ नं. 17, अशोकनगर, उदयपुर -313001 दूरभाष : 0294-2413117, 2411650

Website : www.vigyansamitiudaipur.org. E-mail : samitivigyan@gmail.com

५.(क) आधुनिक विज्ञान एवं द्रव्य की अविनाशिता

विज्ञान, अध्यात्म और हमारा जीवन-१

द्रव्य का नाश नहीं होता है

डॉ. पी. एम. अग्रवाल-उज्जैन

वैज्ञानिक कहते हैं कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूम रही है किन्तु हमें घूमती हुई दिखाई नहीं देती है। किसे सच मानें ? वैज्ञानिक कहते हैं कि चन्द्रमा से प्रकाश नहीं निकलता है, चन्द्रमा तो सूर्य के प्रकाश को ही बिखेरता है, किन्तु हमें ऐसा लगता है कि चन्द्रमा से रोशनी निकलती है। किसे सच मानें ? वैज्ञानिक कहते हैं कि प्रकृति की समस्त क्रियाएं निश्चित नियमों के अनुसार होती हैं किन्तु हमें सब कुछ अस्त-व्यस्त एवं अव्यवस्थित लगता है। किसे सच मानें ? वैज्ञानिक कहते हैं कि पदार्थ एवं ऊर्जा के रुप बदलते हैं किन्तु नाश नहीं होता है किन्तु हमें ऐसा लगताहै कि पदार्थ एवं ऊर्जा का नाश एवं निर्माण होता है। किसे सच मानें ? इसी प्रकार अध्यात्म के अन्तर्गत आत्म की अमरता की बात समझने में भी कठिनाई आ सकती है, यदि हमें अजीव द्रव्यों की अमरता समझ में नहीं आती है।

अनाज के बीज के एक दाने से सैकडों दानों का उत्पादन हम देखते हैं। इसको देखकर भी हमें भ्रम होता है। यदि हम प्रत्येक उत्पादन एवं विनाश के पीछे ध्रुव या अविनाशीपन को भी समझलें तो सृष्टि के वैज्ञानिक रहस्य एवं आध्यात्मिक रहस्य में भेद कम हो जायेगा।

विज्ञान के अनुसार सभी भौतिक पदार्थ एवं रसायन, ऊर्जा के ही रुप हैं व ऊर्जा का कुल योग न तो कम होता है ओर न ही बढ़ता है। इसे ऊर्जा का अविनाशिता का नियम (Law of Conservation of energy) कहा जाता है। विज्ञान के अनुसार अनाज के उत्पादन की क्रिया में बीज, खाद, हवा, पानी, मिट्टी व प्रकाश से विभिन्न रुपों की ऊर्जा निकलकर अनाज के नये दानों के रुप में यह सब ऊर्जा एकत्रित होती है। यानी अनाज उत्पादन की इस क्रिया की गणित करें तो देखेंगे कि इस क्रिया में विभिन्न प्रकार की ऊर्जाओं के रुप बदले हैं किन्तु कुल ऊर्जा का नाप नहीं बदला है।

जैन द्रव्यानुयोग की भाषा में इस बात को यों कहा जायेगा कि अविभागी पुद्गल परमाणुओं की संख्या नहीं बदली है, किन्तु उनकी अवस्था (पर्याय) बदली है।

इतने सारे तथ्यों को बहुत ही सुन्दर ढंग से आचार्य उमास्वामी ने तत्वार्थसूत्र में निम्नांकित दो सूत्रों में कहा है -

सद्द्रव्य लक्षण ।। ५-२९

उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्तं सत् ।। ५-३०

इन सूत्रों का भावार्थ यह है कि द्रव्य का लक्षण सतपना होता है। तथा उत्पादन एवं व्यय के साथ साथ अविनाशीता या ध्रौव्यता से युक्त हो वह सत है ।

सोने के कंगन के बदले उसी सोने से सोने का हार बनाने की प्रक्रिया में कंगन का व्यय, हार का उत्पादन एवं सोने की ध्रौव्यता वाला उदाहरण एक अच्छा एवं सरल उदाहरण है। किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि हम ४ किलो दूध से १ किलो मावा बनने में भी द्रव्य की ध्रौव्यता को समझें। परमाणु विस्फोट की प्रक्रिया में भी ध्रौव्यता हमारी दृष्टि में आये बिना यही कहा जायेगा कि न तो विज्ञान समझा है और न ही तत्वार्थसूत्र के उपर्युक्त सूत्र। इसी प्रकार भौतिक विज्ञान की अत्यन्त सूक्ष्म क्रियाओं - जैसे गामा किरणों द्वारा इलेक्ट्रोन एवं पाजिट्रोन का उत्पादन-में भी द्रव्य का सतपना या शाश्वतपना भी हमें नजर में आ सकता है।

इस चर्चा का अर्थ यह नहीं है कि अनाज का उत्पादन करना कोई उपयोगी कार्य नहीं है ।इसका अर्थ यह भी नहीं है कि ऊर्जा का नाश नहीं होता है अतः पैट्रोल फूंकने में डर किस बातका। हीरे का कचरा कोठी में डालने से नाश नहीं होता है तो इसका अर्थ यह तो नहीं है कि हीरे को व्यर्थ ही कचरे में फेंक दें ।

अध्यात्म में इस अविनाशीता को समझने का मुख्य लाभ यह है कि स्वयं को अविनाशी जीवद्रव्य समझते हुए हम अपने आप को मात्र १०० वर्ष की उम्रवाला मनुष्य ही नहीं समझें। हम जन्म से पहले भी थे व भौतिक मृत्यु के बाद भी रहेंगे। इस सत्य को मानने से न केवल हम निर्भय बन सकते हैं अपितु हमारे मानवीय नैतिक व्यवहार में भी अधिक जिम्मेदार बन सकेंगे ।

इन सूत्रों से एक थ्योरम यह भी सिद्ध होती है कि न केवल प्रत्येक द्रव्य शाश्वत है अपितु समस्त द्रव्यों का यह समुदाय-यानी सृष्टि-भी शाश्वत है - सदैव थी व सदैव रहेगी किंतु रुप बदलते रहेंगे ।

卐卐卐卐

4. (अ) आधुनिक विज्ञान के सन्दर्भ में जैनागम के कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु

गणित, ब्रह्माण्ड विज्ञान आदि समस्त ज्ञेयों को जानते हुए भी आत्मलीन रहने वाले परमात्मा को पं. दौलतरामजी के शब्दों में :

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानन्द रसलीन ।
सो जिनेन्द्र जयवन्त नित, अरि रज रहस विहीन ।।

वंदन करते हुए ज्ञेय, हेय, उपादेय का ज्ञान कराने में सहायक वीतराग विज्ञान की गणित के कुछ पुष्पों को गूंथने का प्रयास करना चाह रहा हूँ।

भाग 1

प्रस्तावना

एक समय था जब गणित का क्षेत्र अंकगणित, बीजगणित एवं रेखागणित तक ही सीमित था । अब गणित का क्षेत्र बहुत ही व्यापक हो गया है । अब ब्रह्माण्ड विज्ञान, क्वाण्टम यांत्रिकी, सांख्यिकी आदि कई विषय गणित की परिधि में आते हैं । हम इस शोध लेख में क्वाण्टम यांत्रिकी व भौतिक विज्ञान के सिद्धान्तों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहेंगे ।

जैन दर्शन अगाध है जिसे आचार्यों ने चार अनुयोगों में वर्णित किया है । इस शोध लेख में हम जैन दर्शन के द्रव्यानुयोग के कुछ बिन्दुओं पर ही चर्चा करेंगे ।

इस शोध लेख में सर्वप्रथम भाग 2 में द्रव्यानुयोग के कुछ तथ्यों की आधुनिक क्वाण्टम यांत्रिकी व भौतिक विज्ञान के सिद्धान्तों से अनुरूपता दर्शाने का प्रयास किया गया है । वैसे तो अनेकों तथ्य ऐसे हैं जिनकी तुलना आधुनिक विज्ञान से की जा सकती है किन्तु नवीनता की दृष्टि से इस लेख में कुछ अनछुए बिन्दुओं को ही छूने का प्रयास किया गया है।

धर्म का उद्देश्य आत्म शांति ही है । इस बात को ध्यान में रखते हुए लेख के अंतिम भाग में अध्यात्म ग्रंथों में वर्णित कुछ महत्वपूर्ण गूढ़ सिद्धान्तों का निरूपण एक वैज्ञानिक की दृष्टि से किया गया है । ऐसा किये जाने के दो उद्देश्य रहे हैं।

(1) विज्ञान के विद्यार्थी के लिए अध्यात्म समझना सरलतर हो जाए ।

(2) इस धारणा का विकास हो कि आधुनिक विज्ञान के अध्ययन से उत्पन्न प्रबल तर्क शक्ति वीतराग विज्ञान को समझने में बाधक नहीं है ।

* जैन गणित एवं त्रिलोक विज्ञान पर अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार, हस्तिनापुर, 1985 में पठित ।

** रीडर, भौतिकी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) ।

भाग-२

जैन दर्शन के कुछ महत्वपूर्ण तथ्य एवं 20वीं शताब्दी का गणित

(1) अनेक आत्माएँ एक ही जगह पर

अनन्तों आत्माएँ एक साथ रह सकती है। सिद्धालय में अनन्तों सिद्ध एक साथ, एक के अन्दर एक, अपनी पृथक्-पृथक् सत्ता लिए निवास करते हैं। जैन दर्शन के इस तथ्य[1] की तुलना बोस-आइन्सटाइन सांख्यिकी (Bose Einstien Statistics) से कर सकते हैं। सन् १९२४ में बोस आइन्स्टाइन[2] ने यह दर्शाया कि विशेष प्रकार के अनन्त कण एक ही जगह पर एक साथ रह सकते हैं। ऐसे कणों को बोसॉन (Boson) कहा जाता है।

आत्मा एवं बोसॉन की यह तुलना इस विशेष गुण के सन्दर्भ में ही समझना चाहिए। वस्तुतः आधुनिक विज्ञान का बोसॉन तो पुद्गल है जबकि आत्मा पुद्गल नहीं है।

(2) असंख्य प्रदेशी लोकाकाश में अनन्तानन्त पुद्गल परमाणु

जैन दर्शन के अनुसार पुद्गल परमाणु का आयतन लोकाकाश के एक प्रदेश के बराबर होता है।[3] लोकाकाश में असंख्य प्रदेश ही होते हैं। असंख्य प्रदेश में अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुओं के अस्तित्व[4] की बात से उपरोक्त बोसॉन कणों का अस्तित्व स्पष्टतः सिद्ध होता है।

(3) दो कालाणु एक साथ नहीं

जैन दर्शन के अनुसार रत्नों की राशि के ढेर की तरह पूरे लोकाकाश में असंख्य कालाणु लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर स्थित है।[5] एक प्रदेश में दो या दो से अधिक कालाणु नहीं रह सकते हैं। इस तथ्य की तुलना फर्मीडिरैक सांख्यिकी (Fermi Dirac Statistics) से कर सकते हैं। सन् 1926 में फर्मी एवं डिरैक[6] ने यह दर्शाया था कि विशेष प्रकार के कुछ कण ऐसे होते हैं जो अलग-अलग ही रहते हैं। ऐसे कणों को फर्मीऑन (Fermion) कहा जाता है। विज्ञान का यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि दो या दो से अधिक एक जैसे फर्मिऑन एक ही प्रदेश पर नहीं रह सकते हैं।

कालाणु एवं फर्मिऑन की यह तुलना भी इस विशेष गुण के सन्दर्भ में ही समझना चाहिए। वस्तुतः आधुनिक विज्ञान का फर्मिआन तो पुद्गल है व कालाणु पुद्गल नहीं है।

(4) स्थान की क्वाण्टम प्रकृति

जैन दर्शन के अनुसार पूरे लोकाकाश का आयतन 343 घन राजू[7] है। इस आयतन में लोकाकाश के असंख्य प्रदेश हैं। जैन दर्शन की शब्दावली में असंख्य का अर्थ अनन्त नहीं होता है। 150 अंकों की संख्या से अधिक अंकों वाली संख्या को असंख्य कहा जाता है।[8] इसका अर्थ यह हुआ कि लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश का आयतन शून्य न होकर शून्येतर (Nonzero) है। यह शून्येतर आयतन यह दर्शाता है कि इससे कम आयतन की कल्पना नहीं की जा सकती है--क्योंकि लोकाकाश के एक प्रदेश के आगे भाग नहीं किये जा सकते हैं। यह तथ्य 1925 की खोज क्वाण्टम सिद्धांत में वर्णित प्रावस्था समष्टि (Phase Space) के एक प्रदेश या प्रकोष्ठ (Cell) के न्यूनतम आयतन[9] (h^3) की याद दिलाता है (यहां h = प्लांक-नियतांक Planks Constant)।

(5) समय की क्वाण्टम प्रकृति

कालाणु की बात हम कर चुके हैं। कालाणु निश्चय काल का द्योतक है। विज्ञान में वर्णित समय (Time) जैन दर्शन का व्यवहार काल है। जैन दर्शन के अनुसार व्यवहार काल का भी एक न्यूनतम मान होता है जिसे एक "समय" कहा जाता है।[10] इस न्यूनतम काल यानी एक "समय" को हम टाइमान (Timon) नाम देकर यह कहना चाहेंगे कि टाइमान की कल्पना का क्वाण्टम सिद्धांत स्वागत करता है।

जैनाचार्यों द्वारा टाइमान की कल्पना एवं उसके सुन्दर एवं स्पष्ट प्रयोग को दर्शाने हेतु आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थ प्रवचनसार की आचार्य अमृतचन्द्र द्वारा विरचित "तत्व प्रदीपिका" नामक संस्कृत टीका की एक पंक्ति को उद्धृत करना उचित होगा। 'ज्ञानतत्व प्रज्ञापन' नामक प्रथम खण्ड में गाथा ८० की टीका करते हुए आचार्य अमृतचन्द्र लिखते हैं:

"...ये चैकसमयमात्रावधृतकाल परिमाणतया परस्परावृता अन्वयव्यतिरेकास्ते पर्याया-श्चिद्विवर्तन ग्रन्थय इति यावत।"[11]

हिन्दी अनुवाद—".....और एक समय की मर्यादा वाला काल परिमाण होने से परस्पर अप्रवृत्त अन्वय व्यतिरेक वे पर्यायें हैं—जो कि चिदविवर्तन की (आत्मा के परिणयन की) ग्रंथियां (गांठें) हैं।"

इस तथ्य के मर्म को समझने हेतु यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि जैन दर्शन के अनुसार एक के बाद एक पर्याय प्रगट होती है। एक पर्याय नष्ट होती है व दूसरी उत्पन्न होती है। एक पर्याय का जीवन काल एक "समय" (Timon) है। समय (Time) की क्वाण्टम प्रकृति को दर्शाने हेतु आचार्य ने बहुत ही सुन्दर शब्द "ग्रन्थय (अर्थात् गांठें)" प्रयुक्त किया है। जैसे एक गांठ से दूसरी गांठ भिन्न है उसी तरह एक "समय" से दूसरा "समय" (Timon) भिन्न है।

भाग-3

अध्यात्म विज्ञान एवं आधुनिक विज्ञान

(1) निश्चय एवं व्यवहार

ऊर्जा न तो पैदा की जा सकती है और न ही नष्ट की जा सकती है। विज्ञान का यह एक सर्वमान्य सिद्धांत है। इसके बावजूद भी विज्ञान की पुस्तकों में ऊर्जा के उत्पादन, ऊर्जा की बचत आदि का उल्लेख होता है। यदि ऊर्जा नष्ट नहीं होती है तो घरों में बिजली को मापने का मीटर क्यों लगाया जाता है? वस्तुतः ऊर्जा न तो पैदा की जा सकती है और न ही नष्ट की जा सकती है, यह एक अकाट्य परम सत्य है। जैन दर्शन की भाषा में इस कथन को निश्चय नय का कथन कहा जा सकता है। ऊर्जा का उत्पादन, बचत आदि को जैन दर्शन की भाषा में व्यवहार नय का कथन कहा जा सकता है। कारखाने में बिजली का जहां उत्पादन होता है वहां वस्तुतः ऊर्जा का उत्पादन नहीं होता है। ऊर्जा एक रूप से दूसरे रूप में बदलती है। इसी प्रकार बिजली का पंखा चलाने में ऊर्जा नष्ट नहीं होती है किन्तु ऊर्जा एक रूप से दूसरे रूप में बदलती है।

आत्मा अजर-अमर है यह निश्चय नय का कथन है । निश्चय नय के अनुसार आत्मा की मृत्यु नहीं होती है । "जीओ और जीने दो" कथन की तुलना "ऊर्जा बचाओ" कथन से की जा सकती है । जिस तरह विज्ञान में निश्चय नय से ऊर्जा नष्ट नहीं होती है फिर भी विज्ञान में व्यवहार नय से "ऊर्जा की बचत" का महत्व होता है उसी प्रकार अध्यात्म में निश्चय नय से आत्मा अजर-अमर होते हुए भी व्यवहार नय से जीवदया, प्राणीरक्षा आदि का महत्व होता है ।

(2) समयसार गाथा 104 का गणित

समयसार गाथा 104 में आचार्य [12] कहते हैं—

द्रव्यगुणस्य चात्मा न करोति पुद्गलमये कर्मणि ।
तदुभयमकुर्वंस्तस्तिमन्कथं तस्य स कर्ता ।। (आ. अमृतचन्द्र का अनुवाद)

अर्थात्,

"आत्मा पुद्गलमय कर्म में द्रव्य को तथा गुण को नहीं करता, उसमें उन दोनों को न करता हुआ वह उसका कर्ता कैसे हो सकता है ?"

एक वैज्ञानिक भी इस तथ्य से सहमत होगा कि वह न तो किसी द्रव्य का निर्माण कर सकता है और न ही किसी द्रव्य के गुण में परिवर्तन कर सकता है, इस अपेक्षा से वह अकर्ता है ।

वैज्ञानिक की मान्यता में इतनी बात स्पष्ट होते हुए भी वह पुरुषार्थहीन नहीं होता है । खदान में सोना जितना है उसको वैज्ञानिक नहीं बढ़ा सकता है इस तथ्य को अच्छी तरह से जानते हुए भी वह शुद्धि के प्रयास एवं अधिक से अधिक सोने को कम से कम समय में प्राप्त करने हेतु अनुसन्धान करता रहता है ।

आत्मशान्ति का इच्छुक जीव भी, इसी तरह, उचित दिशा में पुरुषार्थ सतत् करता रहता है ।

(3) विज्ञान एवं अध्यात्म में अहंकार का निषेध

पूर्व में समयसार गाथा 104 के साथ-साथ वैज्ञानिक का अकर्तापन स्पष्ट किया गया है । जहां कर्तापने का ही अभाव हो गया वहां अहंकार कैसे रह सकता है ।

ज्ञान की कमी होने पर "मैं करता हूँ या हमने किया" ऐसा अहंकार आ सकता है । परमाणु बिजलीघर का वैज्ञानिक तो यह जानता है कि यह बिजली परमाणु से बनी है, उसने नहीं बनाई है । किन्तु एक अल्पज्ञानी कर्मचारी यह अहंकार कर सकता है कि उसने बिजली बनाई है ।

इसी प्रकार सन्त, ज्ञानी पुरुष अहंकार नहीं रखते हैं किन्तु अज्ञानी को कर्तृत्व का अहंकार होता है । [13]

(4) समयसार कलश 212 का गणित

आचार्य अमृतचन्द्र [14] समयसार कलश 212 में समझाते हैं—

बहिर्लुठंति यद्यपि स्फुटदनंतशक्तिः स्वयं
तथाप्यपरवस्तुनो विशति नान्यवस्त्वन्तरम् ।
स्वभावनियतं यतः सकलमेव वस्त्विष्यते
स्वभाव चलनाकुलः किमिह मोहितः क्लिश्यते ।।

अर्थ:—

जिससे स्वयं अनन्त शक्ति प्रकाशमान है ऐसी वस्तु अन्य वस्तु के बाहर यद्यपि लौटती है तथापि अन्य वस्तु, अन्य वस्तु के भीतर प्रवेश नहीं करती, क्योंकि समस्त वस्तुएँ अपने-अपने स्वभाव में निश्चित हैं। ऐसा माना जाता है। ऐसा होने पर भी मोहित जीवन, अपने स्वभाव से चलित होकर आकुल होता हुआ, क्यों क्लेश पाता है?

एक उदाहरण से इस गाथा का मर्म स्पष्ट करना उचित होगा। एक कमरे में दिल्ली, बम्बई, जयपुर, इन्दौर आदि विभिन्न रेडियो स्टेशनों की रेडियो तरंगे विद्यमान रहती हैं। लोकाकाश के समान प्रदेशों में स्थित होने के कारण यह कहा जा सकता है कि एक तरंग ने दूसरी तरंग में प्रवेश कर रखा है किन्तु वस्तुतः प्रत्येक तरंग अपनी-अपनी सत्ता लिये हुए पृथक्-पृथक् ही है, एक तरंग ने दूसरी तरंग का कुछ नहीं बिगाड़ा है, या एक तरंग की विशेषताएँ दूसरी तरंग में नहीं चली जाती हैं। तरंगों की इस विशेषता के कारण ही हम रेडियो से मनचाहा स्टेशन स्पष्ट रूप से सुन सकते हैं।

आत्मशान्ति के लिये जो उपयोगी पाठ हमें द्रव्यानुयोग एवं आधुनिक गणित व विज्ञान की तुलना से लेना है वह उक्त श्लोक की अंतिम दो पंक्तियों में बहुत ही सुन्दर ढंग से कहा गया है : जगत की सारी वस्तुएँ अपने स्वभाव में स्थिर हैं अतः आत्मा को भी स्वभाव से हटकर मोहित होकर क्लेश पाना छोड़कर स्वभाव में ही स्थिर रहना चाहिए।

"आत्मा का अस्तित्व है व मैं आत्मा ही हूँ–शरीर नहीं" इस तथ्य को जिस दिन वैज्ञानिक स्वीकार कर लेगा उस दिन उसके सारे प्रयास शरीर प्रधान न होकर आत्मप्रधान बन जाएँगे। हमें हमारे लाभ के लिये भावी वैज्ञानिकों की राय की प्रतीक्षा नहीं करना है अपितु जीवन की शान्ति हेतु यह स्वीकारना है कि "केवली पण्णतं धम्मं सरणं पवज्जजामि।"

सन्दर्भ

(1) वृहद्द्रव्य संग्रह : गाथा 27 की टीका करते हुए श्री ब्रह्मदेव लिखते हैं : "ओगाढगाढणिचिदो पोग्गलकाएहिं सव्वदो लोगो। सुहमेहिं बादरेहिं य णंताणंतेहिं विविधेहिं "अर्थात् एक निगोद शरीर में द्रव्य-प्रमाण से भूतकाल के सब सिद्धों से भी अनंत गुने जीव देखे गये हैं।

(2) S.N. Bose, Zeits far Physik, 26, 178—181 (1924) A. Einstein, Berliner Berichte, 1924, pp. 261—267, 1925 pp. 3—14.

(3) आचार्य कुन्दकुन्द प्रवचनसार की गाथा 140 में लिखते हैं :

आगासमणुणिविट्ठं आगासपदेससण्णया भणिदं।
सव्वेसि च अणूणं सक्कादि तं देदुमवगासं॥

अर्थात्—एक परमाणु जितने आकाश में रहता है उतने आकाश को "आकाश प्रदेश" ऐसे नाम से कहा गया है। और वह समस्त परमाणुओं को अवकाश देने को समर्थ है।

(4) सन्दर्भ 3 में वर्णित गाथा में स्पष्टतः बताया गया है कि आकाश का एक प्रदेश ही समस्त परमाणुओं को अवकाश देने में समर्थ है।

(5) श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव वृहद्द्रव्य संग्रह की गाथा 22 में लिखते हैं :

लोयायासपदेसे इक्किक्के जे ठियाहु इक्किक्का ।
रयणाणं रासी इव ते कालाणू असंखदव्वाणि ।।

अर्थात्––जो लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर रत्नों के ढेर समान परस्पर भिन्न होकर एक-एक स्थित हैं वे कालाणु असंख्यात द्रव्य हैं।

(6) E. Fermi, Zeits far Physik, 36, 902—912, (1926) P.A.M. Dirac, Proceeding of Royal Soc. of London. (A), 112, 661– 667, 1926.

(7) श्री द्यानतराय चर्चाशतक में पद सं. 12 में लिखते हैं:—

पूरव पश्छिम तलैं सात, मधि एक बखानी ।
पंच स्वर्ग मैं पांच, अंत मैं एक प्रवानी ।।
चहुं मिलाय चहुं अंस, तीनि साढे परमानीं ।
दच्छिन उत्तर सात, साढ़ चौवीस बखानीं ।।
ऊँचा चौदे राजू गुणी, अधिक तितालिस तीनसै ।
यह घनाकार तिहुंलोककौ, केवलज्ञान विषै लसै ।।

इसके टीकाकार श्री हरजीमल्ल "डेढ़ सौ तिथि अच्छर वर" की टीका करते हुए लिखते हैं "डेढ़ सौ अक्षर ताई संख्यात की गिणती हैं।"

(8) देखें चर्चा शतक पद संख्या–34

(9) J.B. Rajam, Atomic Physics, S. Chand & Co. 1965 P. 164 पर लिखते हैं कि––The Elementry Phasecel Is have a finite size of magnitude h^3 in accordance with Heisenberg uncertainty Principle.......One can't make a finer division of the phase space than that given by the above relation.

(10) आचार्य कुन्दकुन्द प्रवचनसार की गाथा 139 में लिखते हैं :

वदिवद्दो तं देसं तस्सम समओ तदो परो पुव्वो ।
जो अत्थो सो कालो समओ उप्पण्णपद्धंसी ।।

अर्थात्––परमाणु एक आकाश प्रदेश का उल्लंघन (मंदगति से) करता है तब उसके बराबर जो काल लगता है वह "समय" है । टीका में आचार्य अमृतचन्द्र लिखते हैं—"अनंशः समयोऽयमाकाश प्रदेशक्यानंशत्वान्यथानुपत्तेः" अर्थात् यह "समय" निरंश है, क्योंकि यदि ऐसा न हो तो आकाश के प्रदेश का निरंशत्व न बन सके।

(11) आचार्य अमृतचन्द्र द्वारा विरचित प्रवचनसार की टीका तत्व प्रदीपिका।

(12) यह संस्कृत अनुवाद आचार्य अमृतचन्द्र का है । मूल गाथा प्राकृत में है जिसे आचार्य कुन्दकुन्द ने रचा है । मूल गाथा इस प्रकार है––

दव्वगुणस्स य आदा ण कुणदि पोग्गलमयम्हि कम्मम्हि ।
तं उभयमकुव्वंतो तम्हि कहं तस्स सो कत्ता ।।

(13) आचार्य अमृतचन्द्र ने समयसार कलश 205 में इसी तथ्य को समझाया है। मूल श्लोक इस प्रकार है––

माऽकर्तारममी स्पृशन्तु पुरुषं सांख्य इवाप्यार्हताः ।
कर्तारं कलयंतु तं किल तदा भदाव बोधादध : ।।
ऊर्ध्वम् तूद्धत बोधं धाम नियंत प्रत्यक्षमेनं स्वयं ।
पश्यन्तु च्युतकर्तृ भावमचलं ज्ञातारमेकं परम् ।।

अर्थ—हेह आर्हत् मत के अनुयायी आत्मा को, सांख्यमतियों की भांति, (सर्वदा) अकर्ता मत मानो, भेदज्ञान होने से पूर्व निरंतर कर्ता मानो और भेदविज्ञान होने के बाद उद्धत ज्ञानधाम में निश्चित इस स्वयंप्रत्यक्ष आत्मा को कर्तृत्वरहित, अचल एक परम ज्ञाता ही देखो।

(14) यह कलश समयसार के सर्वविशुद्ध ज्ञान अधिकार में गाथा 355 के पश्चात् लिखा गया है ।

वर्ष-2, अंक-3, जून-90, 13-19

अर्हत्वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

4. (ग) जैनदर्शन एवं आधुनिक विज्ञान*

(व्यवहार पल्य का गणित एवं आधुनिक अणु विज्ञान)

□ पारसमल अग्रवाल**

I. प्रस्तावना

जैन दर्शन का एक मूल सिद्धान्त यह भी है कि परमात्मा न तो सृष्टि का निर्माण करता है और न ही सृष्टि को चलाता है। सृष्टि के समस्त पदार्थ प्राकृतिक नियमों के अनुसार परिवर्तनशील होते हैं। आधुनिक विज्ञान की भी यही मूल धारणा है। इस मूलभूत समानता के अतिरिक्त चूंकि जैनाचार्यों ने शास्त्र लिखते समय आत्मज्ञान का ही मुख्यतः सहारा लिया था, अतः यदि आज के जटिल एवं खरबों रुपयों के वैज्ञानिक खर्च द्वारा प्राप्त वैज्ञानिक परिणाम जब जैनाचार्यों द्वारा वर्णित तथ्यों से मेल खाते हैं तो सहज ही हमारी बुद्धि उन आचार्यों के प्रति नतमस्तक हो जाती है। ऐसी स्थिति में उनके कथनों पर हमारी श्रद्धा अधिक दृढ़ होना स्वाभाविक है।

मेरे उक्त कथन को पुष्ट करने वाले कई उदाहरण अब तक विभिन्न पुस्तकों एवं शोध पत्रों में वर्णित हो चुके हैं व होते रहेंगे। ऐसे उदाहरणों की श्रृंखला न केवल हमारे आचार्यों की विद्वत्ता एवं महानता को प्रकाशित करती है अपितु कुछ ऐसी दिशाएँ भी दे सकती हैं जिनमें आधुनिक विज्ञान भी लाभान्वित हो सकता है। इसी क्रम में मैं यहाँ कुछ तथ्यात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करना चाह रहा हूँ।

इस लेख के द्वितीय खण्ड में जैनागम में बहुचर्चित व्यवहार पल्य की रोचक परिभाषा व गणित से जुड़े सूक्ष्म रसायन शास्त्र पर प्रकाश डाला गया है एवं अंतिम खण्ड में रसायन शास्त्र से भी सूक्ष्मतर विज्ञान पर जैनाचार्यों की पैनी दृष्टि एवं उनकी आधुनिक विज्ञान में संभावित उपयोगिता के संकेत दिए जा रहे हैं।

II.–व्यवहार पल्य परिभाषा में गर्भित विज्ञान

(a) व्यवहार पल्य की परिभाषा

जिनसेनाचार्य के हरिवंश पुराण के सातवें सर्ग में आचार्य लिखते हैं[1]–

"एक ऐसा गढ़ा खोदा जाय जो एक योजन चौड़ा, एक योजन लम्बा और एक योजन गहरा हो और इसमें मुख तक एक से सात दिन तक के मेण के बच्चे के ऐसे कूट-कूट कर

---

* पं. जगन्मोहनलाल शास्त्री साधुवाद समारोह के अन्तर्गत जैन विद्या संगोष्ठी (सतना 10-12, अप्रैल-90) में पठित।

** रीडर, भौतिकी अध्ययन शाला, विक्रम वि. वि., उज्जैन।

बालों के टुकड़े भरे जायें जिनके फिर टुकड़े न हो सकें । ऐसे बालों के टुकड़ों से भरे हुए गढ़े का नाम व्यवहार पल्य है और इन टुकड़ों में से हर एक टुकड़े को सौ-सौ वर्ष के बाद निकाला जाए तो जितने काल में वह गढ़ा खाली हो जाय उतने काल का नाम व्यवहार पल्योपम काल है ।" (48–49)

जैन सिद्धान्त दर्पण[2] में इसका कथन निम्नानुसार किया गया है:—

'प्रमाणांगुल से निष्पन्न एक योजन प्रभाग गहरा और एक योजन प्रमाण व्यास वाला एक गोला गर्त्त[3] (गढ़ा) बनाना। उस गर्त्त को उत्तम भोग भूमि वाले मेंढ़के बालों के अग्रभागों से भरना । गणित करने से उस गर्त्त के रोमों की सख्या[4] 413452630308203177749512192000000000000000000 हुई । इस गर्त्त के एक-एक रोम को सौ-सौ वर्ष पीछे निकालते-निकालते जितने काल में वे सब रोम समाप्त हो जायें, उतने काल को व्यवहार-पल्य का काल कहते हैं ।[5]

(b) प्रयुक्त सूत्र

अर्थ प्रकाशिका[6] में इस संख्या (रोम संख्या) की गणना जिस विधि से की है, उसे निम्नांकित सूत्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है:—

$$n = \frac{\pi r^2 d}{a^2 l} \qquad (1)$$

यहाँ,

n = गढ़े में रोमों की संख्या

r = आधा योजन = 1000 कोश

d = एक योजन = 2000 कोश

a = बाल के टुकड़े का व्यास

l = बाल के टुकड़े की लम्बाई = a

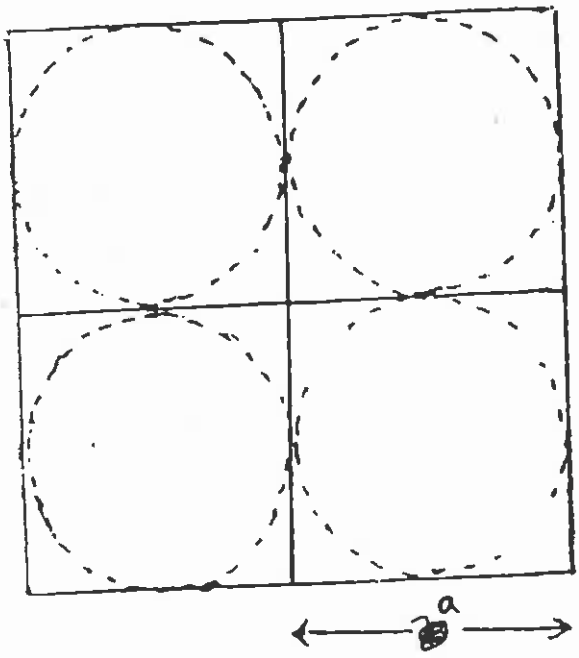

चित्र क्र. 1 : व्यास 'a' के कई वृत्त सटा कर रखे जाएँ तो यद्यपि वृत्ताकार क्षेत्रफल $\pi a^2/a$ होगा किन्तु प्रत्येक वृत्त a^2 क्षेत्रफल रोकेगा। औसतन $(a^2 - \pi a^2/4)$ क्षेत्रफल प्रति वृत्त रिक्त रहेगा ।

समीकरण (1) के दायें पक्ष के हर का रहस्य चित्र क्र. 1 से स्पष्ट हो सकता है। चित्र में वृत्ताकार काट का क्षेत्रफल यद्यपि $\frac{\pi a^2}{4}$ है किन्तु क्षेत्रफल a^2 में दूसरा बाल का टुकड़ा प्रवेश नहीं कर पायेगा। अतः बाल के टुकड़े का आयतन यद्यपि $\frac{\pi a^2 l}{4}$ (यदि बेलनाकार है) या $\frac{4}{3}\pi a^3$ (यदि गोलाकार है) है किन्तु उसके द्वारा रोके जाने वाला आयतन $a^2 l$ (यदि बेलनाकार है) या a^3 (यदि गोलाकार है) होगा यानी $\left(a^2 l - \frac{\pi a^2 l}{4}\right)$ या $\left(a^3 - \frac{3}{8}\pi a^3 \text{ आयतन}\right)$ प्रत्येक बाल के आसपास रिक्त रहेगा।

(c) निहित रसायन शास्त्र

इस तथ्य में निहित रसायन विज्ञान के उद्घाटन हेतु हम परिभाषा एवं a के आंकिक मान का विश्लेषण कर सकते हैं। परिभाषा में कहा गया है ऐसे बालों के टुकड़े भरे जायें **'जिनके फिर टुकड़े न हो सकें'**। इस तथ्य का मर्म समझने के पूर्व जैनागम के इससे सम्बन्धित कुछ अन्य तथ्यों का उल्लेख आवश्यक होगा। जैनागम में स्थान-स्थान पर यह उल्लेख आता है कि पुद्गल के सबसे छोटे टुकड़े को अविभागी पुद्गल परमाणु या परमाणु कहते हैं। सुविधा एवं भ्रम से बचने हेतु अविभागी पुद्गल परमाणु को मैं यहाँ 'अवि. परमाणु' द्वारा व्यक्त करना चाहूँगा ताकि विज्ञान की पुस्तकों में प्रचलित परमाणु (atom) एवं 'अवि. परमाणु' की भिन्नता बनी रहे। जैनागम में यह भी उल्लेख[7] है कि अनन्तानन्त 'अवि. परमाणुओं' के स्कन्ध को अवसन्नासन्न कहते हैं व आठ अवसन्नासन्न का एक सन्नासन्न, 8 सन्नासन्न का एक तृटरेणु, 8 तृटरेणु का एक त्रसरेणु, 8 त्रसरेणु का एक रथरेणु, 8 रथरेणु का एक उत्तम भोग भूमि वालों का बालाग्र होता है। स्पष्ट है कि 'अवि० परमाणु' तो बाल के टुकड़े से बहुत-बहुत सूक्ष्म है। इतना होते हुए भी आचार्यों ने उक्त परिभाषा में 'जिनके फिर टुकड़े न हो सके' ऐसा लिखा है। इसका क्या प्रयोजन हो सकता है?

रसायन शास्त्र का विद्यार्थी जिसने अणु एवं परमाणु की परिभाषा समझी है वह जानता है कि पानी के सबसे छोटे टुकड़े यानी पानी के एक अणु (H_2O) के यदि हम फिर टुकड़े करेंगे तो फिर वह पानी नहीं रहेगा (हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन हो जायेगा)। इसी प्रकार इस परिभाषा में भी यह मर्म है कि यद्यपि बाल का सूक्ष्मातिसूक्ष्म टुकड़ा भी एक स्कन्ध ('अवि. परमाणुओं' का समूह) है व उसके टुकड़े तो हो सकते हैं किन्तु एक टुकड़ा ऐसा भी होता है कि उसके पुनः टुकड़े करने पर बाल के रासायनिक गुण समाप्त हो जाते हैं यानी बाल जिन रासायनिक पदार्थों से मिल कर बना है वे पदार्थ उस टुकड़े में उसी अनुपात में कायम रहे तब तक ही वह टुकड़ा बाल कहला सकता है। इस प्रकार 'फिर टुकड़े न हो सकें' इस तथ्य को पुद्गल के 'अवि. परमाणु' एवं स्कन्ध की संकल्पना के साथ मिलाकर देखने से बाल की आणविक प्रकृति स्पष्ट होती है। इस तथ्य की विशेष पुष्टि के लिये हम बाल के इस सूक्ष्मतम टुकड़े की मोटाई या व्यास 'a' के मान पर विचार कर सकते हैं।

'a' का आंकिक मान क्या होना चाहिये ? यदि 'a' का मान आज के रसायन विज्ञान द्वारा वर्णित अण् के आकार से बहुत छोटा हो, अर्थात् यदि a = 1.0 या 0.1 एंगस्ट्राम[8] या इनसे कम हो तो हमें इस मान को पचाने में बहुत कठिनाई होगी। क्योंकि हम जानते हैं कि बाल बहुत बड़े अणुओं से बनता है जिनका आकार कई एंगस्ट्राम होता है। इसी प्रकार यदि a का मान कई सौ एंगस्ट्राम हो जाए तो भी इतना बड़ा बाल का आवश्यक अणु समूह समझना कठिन होगा–विशेषत: ग्रन्थों में वर्णित इस परिभाषा के साथ कि 512 उत्तम योग-भूमि के बालाग्र के माप के बराबर 1 कर्म भूमि[9] का बालाग्र होता है।

इस प्रकार 'a' का मान जैन करणानुयोग की बहुत बड़ी कसौटी है। सौभाग्य से 'a' का मान इस कसौटी पर खरा उतरता है। गणना करने से (देखिये परिशिष्ट-1) 'a' का मान 79.936 एंगस्ट्राम आता है जो न तो अधिक की सीमा में है और न ही कम की सीमा में।

III. उपसंहार : आधुनिक विज्ञान के लिये प्रकाश किरण

आधुनिक विज्ञान की समस्त शाखाएँ भौतिक विज्ञान (Physics) पर आधारित हैं एवं भौतिक विज्ञान की आधारशिला क्वाण्टम सिद्धान्त[10] है। क्वाण्टम सिद्धान्त का एक भारी आधार स्तम्भ 'अनिश्चितता सिद्धान्त' (Uncertainty Principle) है। किन्तु दुर्भाग्य (या सौभाग्य) से अनिश्चितता सिद्धान्त बहुत ही शोध एवं विवाद का विषय रहा है। कई प्रयोगों से इसका खण्डन न हो सका है किन्तु आइन्स्टाइन जैसे वैज्ञानिक भी इस अनिश्चितता सिद्धान्त को स्वीकार करने में कठिनाई महसूस करते हैं। इसका समाधान निकालने के लिये कई वैज्ञानिकों की यह धारणा है कि जिसे वैज्ञानिक सूक्ष्मातिसूक्ष्म मान रहे हैं वह वस्तुत: अत्यन्त स्थूल है व यदि हम आज के सूक्ष्मातिसूक्ष्म से सूक्ष्मतर व्यवस्था समझ लें तो विवादास्पद अनिश्चितता सिद्धान्त का विवाद समाप्त हो सकता है।[11] यानी इस लेख में वर्णित 'अवि. परमाणु' अवसन्नासन्न, सन्नासन्न, तुट रेणु, त्रसरेणु, रथरेणु आदि इसी धारणा को बल प्रदान करते हैं।

पिछले खण्ड में वर्णित सूत्रों के अनुसार 32768 अवसन्नासन्न के बराबर एक उत्तम भोगभूमि वालों का बालाग्र होता है। अत: उत्तम भोगभूमि वालों के बालाग्र की मोटाई 79.936 एंगस्ट्राम लेने पर एक अवसन्नासन्न की माप 243.9 फर्मी (Fermi)[12] आती है। चूंकि अनन्तानन्त 'अवि. परमाणुओं' के स्कन्ध को अवसन्नासन्न कहते हैं। अत: अवसन्नासन्न से भी सूक्ष्मतर माप में जाने की अभी बहुत गुंजाइश है। आधुनिक विज्ञान में वर्णित प्रोटॉन, क्वार्क, इलेक्ट्रॉन आदि का चिरसम्मत (Classical) माप कुछ फर्मी होता है व क्वाण्टम सिद्धान्त के अनुसार इनका प्रभावी क्षेत्र कई फर्मी दूरी तक रहता है। अत: अवसन्नासन्न एवं 'अवि. परमाणु' के बीच की माप की जैनागम में खोज आधुनिक विज्ञान के लिए किसी प्रकार उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

इसके अतिरिक्त आधुनिक विज्ञान के परमाणु से सूक्ष्मतर मापों में अभी अज्ञानता का बहुत अन्धकार भरा हुआ है अत: इस अन्धकार में रथरेणु, त्रसरेणु, तूटरेणु, सन्नासन्न एवं अवसन्नासन्न की जानकारी, हो सकता है, कुछ प्रकाश दे सके। आधुनिक विज्ञान के लिए

लोकाकाश के एक प्रदेश के आकार या 'अवि. परमाणु' के आकार तक तो पहुँचना अभी बहुत दूर प्रतीत होता है।

कृतज्ञता ज्ञापन

मैं मेरे पिताश्री पं. भँवरलालजी के प्रति इस लेख में मदद के लिए कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहूँगा जिन्होंने पं. द्यानतरायजी कृत देवपूजा की जयमाला में वर्णित 'पैंतालीस पल्य के अच्छर' की तरफ संकेत कर मुझे इस दिशा में शोध करने को प्रेरित किया।

ऐलक पन्नालाल दि. जैन सरस्वती भवन, फ्रीगंज, उज्जैन एवं इसके व्यवस्थापक पं. दयाचंदजी, शास्त्री से प्राप्त शास्त्रों की मदद के लिए भी हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। कौनसी जानकारी किस ग्रन्थ में मिल सकेगी इस मामले में पं. दयाचंदजी का विषद ज्ञान इस शोध पत्र के बनाने में बहुत सहायक सिद्ध हुआ है।

परिशिष्ट–1

(a) जैन सिद्धान्त दर्पण में निम्नांकित सूत्र वर्णित[6] हुए हैं :—

8 उत्तम भोग भूमि वालों का वालाग्र = 1 मध्यम भोग भूमि वालों का वालाग्र,
8 मध्यम भोग भूमि वालों का वालाग्र = 1 जघन्य भोग भूमि वालों का वालाग्र,
8 जघन्य भोग भूमि वालों का वालाग्र = 1 कर्मभूमि वालों का वालाग्र,
8 कर्मभूमि वालों का वालाग्र = 1 कर्मभूमि वालों के वालाग्र की एक लीख
8 लीख = 1 सरसों,
8 सरसों = 1 जौ,
8 जौ = 1 अंगुल (यह अंगुल उत्सेधांगुल है। प्रमाणांगुल इसमें 500 गुना होता है।),
6 अंगुल = 1 पाद,
2 पाद = 1 वितस्त,
2 वितस्त = 1 हाथ,
4 हाथ = 1 धनुष,
2000 धनुष = 1 कोश,
4 कोश = 1 योजन,

(प्रमाणांगुल से निष्पन्न योजन उत्सेधांगुल से निष्पन्न योजन से 500 गुना होता है अर्थात् 2000 कोश के बराबर होता है।

इन सूत्रों से निम्नांकित परिणाम प्राप्त हो सकते हैं—

1 कोश $= 2000 \times 4 \times 2 \times 2 \times 6 \times 8 \times 8 \times 8 \times 8 \times 8 \times 8 \times 8\,a$
$= 1000 \times 192 \times 8^7\,a$

या 2 मील $= 1000 \times 192 \times 8^7\,a$

या $2 \times 1760 \times 3 \times 30.48$ सेण्टीमीटर $= 1000 \times 192 \times 8^7\,a$

या $= \frac{2 \times 1760 \times 3 \times 30.48 \times 10^8}{1000 \times 192 \times 8^7}$ एंगस्ट्राम

$= 79.936$ एंगस्ट्राम

(b) लेख में वर्णित समीकरण (1) से गणना :

$l = a$ रखने पर

$$a^3 = \frac{\pi r^2 d}{n}$$

यहाँ $r = 0.5$ योजन

$d = 1.0$ योजन

$n = 4.134526..... \times 10^{44}$

1 योजन $= 2000 \times 2 \times 1760 \times 3 \times 30.48 \quad 10^8$ एंगस्ट्राम

$= 64373.76 \times 10^{12}$ एंगस्ट्राम

$$\therefore a^3 = \frac{3.14 \times 0.5 \times 0.5 \times 1.0 \times 64373.76^3 \times 10^{36}}{4.134526..... \times 10^{44}} A^{\circ 3}$$

$$= \frac{3.14 \times 0.5 \times 0.5 \times 1.0 \times 2.6676363 \times 10^{14} \times 10^{36}}{4.134526..... \times 10^{44}} A^{\circ 3}$$

$= 0.5064896..... \times 10^6 \ A^{\circ 3}$

$\therefore a = (0.5064896..... \times 10^6)^{1/3} = 79.712 \ A^{\circ}$

दोनों विधियों से प्राप्त परिणामों में समानता कोई आश्चर्य नहीं है क्योंकि विधि (a) के सूत्रों का उपयोग करके ही अर्थ प्रकाशिका में n की गणना करके n का मान $4.134526 .... \times 10^{44}$ प्राप्त किया था। दोनों विधियों में प्राप्त परिणामों में अन्तर 0.28 प्रतिशत है। इस अन्तर का कारण π के मान में भिन्नता प्रतीत होती है।

सन्दर्भ

1. जिनसेनाचार्य : भाषा हरिवंश पुराण,
   प्रकाशक : गाँधी हरिभाई देवकरण जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, 1918
2. पं. गोपालदासजी बरैया, 'जैन सिद्धान्त दर्पण'
   प्रकाशक : मुनिश्री अनन्तकीर्ति दि. जैन ग्रन्थमाला समिति, बम्बई, 1928
3. विभिन्न ग्रन्थों में वर्णित परिभाषा एवं गणना के आधार पर यह ज्ञात होता है कि यह गढ़ा बेलनाकार (Cylinadrical) होना चाहिये। यानी 'गोल' का अर्थ वृत्ताकार परिच्छेद लेना चाहिये
4. यह संख्या 45 अंक प्रमाण है। अर्थ प्रकाशिका में भी यह संख्या इतनी ही लिखी हुई है।
5. सन्दर्भ 2, पृ. 128–129

6. पं. सदासुखजी कासलीवाल (जयपुर) एवं पं. परमेष्ठी सहायजी अग्रवाल (आरा) द्वारा रचित 'अर्थप्रकाशिका' प्रकाशक : गाँधी हरिभाई देवकरण जैन ग्रन्थमाला, 1916, पृ. 163-165

7. सन्दर्भ : 2, पृ. 128

8. एक एंगस्ट्राम=एक सेण्टीमीटर का दस करोड़वां भाग

9. हमारी पृथ्वी कर्मभूमि है।

10. पारसमल अग्रवाल, 'क्वाण्टम सिद्धान्त', (राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, 1983)

(b) Paras Mal Agrawal, Quantum Mechanies', in 'Horizons of Physics', Edited by A.W. Joshi, (Wiley Eastern, Ltd. New Delhi, 1989), Chapter 2

(a) David Bohm, 'Quantum Theory', (Asia Publishing House, Bombay, 1960).

(b) P.C.W. Davies, and J.R. Brown (Editors), 'The Ghost in the Atom', A discussion of the mysteries of quantum physics (Cambridge University Press, 1986).

12. 1 फर्मी $=10^{-13}$ सेण्टीमीटर=एक सेण्टीमीटर का 100 खरबवां भाग।

- मध्यप्रदेश के जावद में 1946 में जन्में डॉ. पारसमल अग्रवाल ने एम.एससी. भौतिक विज्ञान की डिग्री गोल्ड मेडल सहित प्राप्त की। राजस्थान विश्वविद्यालय से पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। 14 वर्ष राजकीय महाविद्यालय भीलवाडा, कोटा, झालावाड एवं अजमेर में, एवं 11 वर्ष विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन में लेक्चरर, रीडर और प्रोफेसर का कार्य किया।16 वर्ष ओक्लाहोमा स्टेट यूनिवर्सिटी स्टिलवाटर (यूएसए) में विजिटिंग प्रोफेसर एवं अनुसंधान वैज्ञानिक का कार्य किया। अन्तिम सेवा ओक्लाहोमा स्टेट यूनिवर्सिटी स्टिलवाटर (यूएसए) में 2010 में पूर्ण की। विज्ञान के क्षेत्र में बी.एससी. एवं एम.एससी. स्तर की 5 पुस्तकें एवं विश्व के उच्चतम स्तर के जर्नल्स में 80 रिसर्च पेपर प्रकाशित किये।

- जैन आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थ समयसार के अंग्रेजी अनुवाद एवं टीका का लेखन। इसका प्रथम भाग **Soul Science** पुस्तक के रूप में 2014 में प्रकाशित। **'अनेकान्त'** विषय पर एक पुस्तक प्रकाशित। 250 से अधिक लेख अध्यात्म पर विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित

- 1998 में प्रकाशित शोध के आधार पर अमरीकी रक्षा विभाग की सैन्य प्रयोगशाला के डॉयरेक्टर ने इनके व इनकी टीम द्वारा किये गये अनुसन्धान को वर्ष 1998 के सर्वश्रेष्ठ अनुसन्धान पुरस्कार के लिये Nomination किया था। इनका यह अनुसन्धान विश्व में कई स्थानों पर अतीत मे बिछाई गई सैन्य सुरंगों (Mines) को बिना विस्फोट किये नष्ट करने की प्रक्रिया से सम्बन्धित था। आपके शोध क्षेत्रों में आण्विक गतिकी, नैनो विज्ञान, रासायनिक भौतिकी और क्वान्टम यान्त्रिकी मुख्य है। अमरीकी सरकार ने इन्हें असाधारण सामर्थ्यवान वैज्ञानिक (A scientist of extra-ordinary ability) की श्रेणी में स्वीकारा है।

- डॉ. अग्रवाल जैन अध्यात्म जगत में भी गहन अध्येता एवं ओजस्वी वक्ता के रूप में जाने जाते हैं। ज्ञान सागर साइन्स फाउन्डेशन, नई दिल्ली द्वारा 2014 में 2 लाख रूपये की नकद पुरस्कार राशि सहित 'जैन–लारियट' (प्रथम) [Jain Laureate] का सम्मान प्राप्त । Many other awards in USA and India in the field of science as well as Jain philosophy.